नवभारत टाइम्स

नवभारत टाइम्स । नई दिल्ली। बुधवार, 23 अक्टूबर 2019

बादशाहत की चमक

टीम इंडिया ने साउथ अफ्रीका के खिलाफ टेस्ट सीरीज में 3-0 से जीत हासिल कर देशवासियों को दीवाली को तोहफा दिया और दुनिया के टेस्ट क्रिकेट परिदृश्य में अपना मुकाम थोड़ा और ऊंचा कर लिया। मंगलवार को रांची टेस्ट के चौथे दिन भारत ने साउथ अफ्रीका को पारी और 202 रनों से हरा दिया। साउथ अफ्रीका के खिलाफ यह भारत की सबसे बड़ी जीत है। इस शानदार जीत के साथ ही भारत ने घरेलू सरजमीं पर



दक्षिण अफ्रीका का सूपड़ा साफ

लगातार सबसे ज्यादा टेस्ट सीरीज जीतने का वर्ल्ड रिकॉर्ड बनाया है। भारतीय टीम ने एमएस धोनी, अजिंक्य रहाणे और विराट कोहली की कप्तानी में अब तक घरेल सरजमीं पर कल 11 सीरीज जीती हैं। इस क्रम में उसने ऑस्ट्रेलिया को पीछे छोड़ दिया है, जिसने दो बार 10-10 टेस्ट सीरीज लगातार अपने देश में जीती हैं। भारत ने इस श्रृंखला का पहला टेस्ट 203 रन से और दूसरा पारी और 137 रन

से जीता था। तीनों मैचों में साउथ अफ्रीकी टीम एकदम बेदम नजर आई। भारतीय खिलाडी खेल के हर विभाग में हावी रहे। सीरीज विजय में सबसे उल्लेखनीय भूमिका भारत के पेस अटैक की रही। अब तक भारतीय माहौल में स्पिनर्स को ही भारत की असली ताकत माना जाता था। हर मेहमान टीम नेट पर स्पिन प्रैक्टिस ही ज्यादा करती थी, क्योंकि यह मानकर चलती थी कि फिरकी के जाल से बचना ही उसके सामने मुख्य चुनौती है। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में भारतीय पेसर्स की नई खेप ने दुनिया को चिकत कर दिया है। आज देश के पास एक से एक शानदार तेज गेंदबाज हैं जो हर कंडीशन में एक लय में गेंदबाजी कर सकते हैं और जरूरत के मताबिक अपनी शैली बदल भी सकते हैं। दक्षिण अफ्रीकी बल्लेबाज जुबैर हमजा ने स्वीकार किया कि वे स्पिनरों के खिलाफ रणनीति बनाकर आए थे पर उन्हें तेज गेंदबाजों से कड़ी चुनौती मिली। पिछले दिनों वेस्टइंडीज के पूर्व बल्लेबाज ब्रायन लारा ने टीम इंडिया के पेस अटैक की जमकर तारीफ की और कहा कि इसको देखकर उन्हें 80 के दशक का कैरीबियाई तेज गेंदबाजी आक्रमण याद आ जाता है। सबसे बड़ी बात यह रही कि इस टीम में ईशांत शर्मा को छोड़कर बाकी पेसर ज्यादा अनुभवी नहीं थे, फिर भी उन्होंने जबर्दस्त धार दिखाई। बल्लेबाजी में भी हर स्तर पर मजबूती दिखी। इस सीरीज से सलामी बल्लेबाज की भूमिका शुरू करने वाले रोहित शर्मा ने तीन टेस्ट में 529 रन जोड़े। मयंक अग्रवाल ने भी एक दोहरा शतक और एक शतक जड़ा जिससे साफ है कि भारत को एक ताकतवर और भरोसेमंद सलामी जोड़ी मिल गई है। मिडल ऑर्डर में चेतेश्वर पुजारा, विराट कोहली और अजिंक्य रहाणे की तिकड़ी मजबूत है। अच्छे स्पिनर्स का जुड़ना लगातार जारी है। शाहबाज नदीम ने अपने पहले ही टेस्ट में सबका ध्यान खींचा है। विराट कोहली की कप्तानी की चमक थोड़ी



और बढ़ी है। खिलाड़ियों को एकज़्ट रखने और नई चुनौतियों के लिए

उन्हें तैयार करने में फिलहाल वे दुनिया के सभी कप्तानों में अव्वल हैं।

उसी तमस का घेरा

मेरे समेत कई लोगों को ऐसा लगता रहा है कि उन्होंने गोविंद निहलानी की बनाई पांच घंटे लंबी फिल्म या टीवी सीरीज 'तमस' देख ली तो इसी नाम वाला भीष्म साहनी का उपन्यास पढने की क्या जरूरत है? पिछले हफ्ते यह उपन्यास खत्म करने के बाद मैंने बीते तीन-चार दिन अपनी इस समझ पर पछताने और मार्च 1947 में हुए रावलपिंडी के दंगों के ब्यौरे जुटाने में बिताए हैं। कई फिल्म समीक्षाओं में इसे विभाजन की त्रासदी से जोड़ दिया गया है। खुद निहलानी को महज सात साल की उम्र में अपनी जन्मभूमि कराची छोड़नी पड़ी थी तो बिल्कुल संभव है कि 'तमस' के ट्रीटमेंट में बंटवारे की छायाएं ज्यादा गहरी छपी रह गई हों। लेकिन उपन्यास 'तमस' में विभाजन सिर्फ एक दूर की आशंका है। इतनी दूर की कि किताब के अंतिम हिस्से में एक दलाल दंगों के बाद शहर के संभ्रात हिंद-मस्लिम-सिख व्यापारियों के जमावड़े में प्रॉपर्टी की खरीद-बिक्री की पुरजोर कोशिशों में जुटा दिखता है।

पूरे उपन्यास में कहीं भी इस बात का जिक्र नहीं है कि वह किस शहर के बारे में है। मुझसे ठीक पहले जिस मित्र ने किताब पढ़ी थी, उससे मैंने पूछा कि क्या उसे कुछ अंदाजा हो पाया कि यह किस शहर का किस्सा है। उसने कहा, 'मुझे तो बनारस का लगा।' यह एक असावधान पाठक की बात हो सकती है, लेकिन इसके पीछे कुछ हाथ कहानी को घटनाओं से दूर ले जाने के लेखकीय कौशल का भी है। रावलपिंडी के दंगे इस मामले में रहस्यमय माने जाते हैं कि इनकी साजिश रचने वालों और हफ्ते भर इन्हें भड़काए रखने वालों के बारे में सटीक जानकारी कभी नहीं मिल पाई। इन्हें रोकने के लिए कांग्रेस और मस्लिम लीग, दोनों के डेलिगेशन दिल्ली में ब्रिटिश हकमत के प्रतिनिधियों से बात करके गए, फिर भी दंगे चलते रहे। भीष्म साहनी इस उपद्रव के वक्त 32 साल के जमीनी कार्यकर्ता थे। उनकी रचना में जिला अफसर से हुई निरर्थक बातचीत के ब्यौरे हैं लेकिन दिल्ली का कोई जिक्र नहीं है।

एक गुंथे हुए समाज को छिनगा देने वाली इन घटनाओं और 'तमस' लिखने के लिए कलम उठाए जाने के बीच कम से कम 23 साल का फासला है। प्रस्तावना में भीष्म जी लिखते हैं कि 'भिवंडी के दंगे कब हुए थे, मुझे याद नहीं लेकिन इनके ठीक बाद मैंने तमस लिखना शुरू किया था। वहां की गलियों में घूमते हुए मुझे लगा था कि यह खामोशी मेरी सुनी हुई है।' पुलिस रिकॉर्ड में भिवंडी के भीषण दंगों का समय 7-8 मई 1970 दर्ज है जबकि भीष्म साहनी को 'तमस' के लिए साहित्य अकेडमी अवार्ड 1975 में प्राप्त हुआ। बहरहाल, सारी बौद्धिक बहसों और इतिहास की चिंताओं को एक तरफ रख दीजिए। इस भ्रम को भी परे झटक दीजिए कि किताब की कहानी आपको पता है। जीवन के एक यादगार अनुभव के रूप में 'तमस' पढ़िए और सोचिए कि आपसे क्या छूट रहा था!

उंगलियों से देखना

लुई के पिता साइमन ब्रेल चमड़े से घोड़े की काठियां बनाने का काम करते थे। एक दिन पिताजी कहीं बाहर गए हुए थे तो तीन वर्षीय लुई उनकी कार्यशाला में घुस गया और चमड़ा काटने और छेद करने वाले औजारों से खेलने लगा। अचानक चमड़े में छेद करने वाला एक तेज सूजा फिसल कर उसकी दाहिनी आंख में जा लगा। उसकी दाई आंख की रोशनी तो गई

ही इन्फेक्शन के कारण बाई आंख की रोशनी भी चली गई। इस तरह बचपन में ही पूरी तरह दृष्टिहीन हो चुका लुई पहले अपने शहर के एक स्कूल में पढ़ा। बाद में उसका एडमिशन पेरिस के नेत्रहीन बच्चों के स्कूल रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ ब्लाइंड में कराया गया। अध्ययन के दौरान लुई को नई किताबों के पाठ के लिए दूसरों पर निर्भर रहना होता था। यह निर्भरता उसे पसंद नहीं आती थी। वह हमेशा सोचा करता कि काश कोई ऐसी पद्धति होती जिससे दृष्टिहीन लोग भी आम लोगों की तरह पढ़ पाते। इसके लिए वह नई-नई तरकीबें सोचता रहता था, पर कामयाबी नहीं मिलती थी। अंत में जिस सूजे ने बचपन में उसकी आंखों की रोशनी

छीन ली थी. उसी से उसे रास्ता सूझा। हुआ यों कि एक दिन उसने एक मोटे कागज पर सूजे से सुराग किया तो नीचे के उभरे हुए भाग को उसकी उंगलियों ने महसूस किया। उन उभरे हुए हिस्सों पर उंगलियां फिराते हुए ही लुई के मन में एक विचार आया जिससे उसके मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। इसके बाद उन उभरे हुए हिस्सों की सहायता से लुई ने हर वर्ण के लिए एक निश्चित नमूना बनाया। इनको छुकर वर्ण, वर्णों की मदद से शब्द तथा शब्दों के जरिए वाक्य आसानी से पढ़े जा सकते थे। यह ब्रेल लिपि का आविष्कार था जिसने न केवल लुई को अमर कर दिया बल्कि दुनिया भर के नेत्रहीनों के जीवन में हमेशा के लिए रोशनी ला दी।

संकलन : दीनदयाल मुरारका

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार आने वाले दिनों में भारत दुनिया का नया कारखाना बन सकता है चीन से भाग रही कंपनियों को यहां



चीन से बड़े पैमाने पर जो कारोबार दूसरे देशों में जा रहा है, उसका बड़ा हिस्सा भारत हासिल कर सकता है। इसके लिए जरूरी होगा **जयंतीलाल भंडारी** कि भारत लॉजिस्टिक्स

की सुविधा, मानवीय कौशल शक्ति और अन्य पूरक बुनियादी ढांचे की क्षमता बाहरी कंपनियों की अपेक्षा के अनुरूप बढ़ाए। हाल ही में चीन के प्रमुख अखबार 'ग्लोबल टाइम्स' ने अपने एक विशेष आलेख में कहा है कि इस समय जब चीन से कंपनियों के पलायन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, भारत 'मेक इन इंडिया' को सफल बना सकता है, साथ ही वह दुनिया का मैन्युफैक्चरिंग हब बन सकता है। इस आलेख में यह भी कहा गया है कि मामल्लपुरम में 12 अक्टूबर को चीन के राष्ट्रपति शी चिनिफंग और नरेंद्र मोदी के बीच दूसरी अनौपचारिक शिखर वार्ता के बाद भारत के लिए मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र में कामयाबी

📕 प्रॉडक्ट की साख

का रास्ता खुल गया है।

पिछले दिनों नई दिल्ली में वर्ल्ड इकनॉमिक फोरम (डब्ल्युईएफ) और भारतीय उद्योग परिसंघ (सीआईआई) द्वारा आयोजित इंडिया इकनॉमिक समिट में अमेरिका के वाणिज्य मंत्री विल्बर रॉस ने कहा कि अमेरिका और चीन के बीच बढ़ते ट्रेड वॉर का भारत भरपूर फायदा उठा सकता है। उन्होंने कहा कि अब अमेरिका भारत को वह मौका देगा जो अब तक वह चीन को देता आया है। इसके पहले संयुक्त राष्ट्र महासभा

इन दिनों दुनिया भर के में अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप द्वारा विगत विशेषज्ञ कह रहे हैं कि 24 सितंबर को दिए गए भाषण में कहा गया कि 2001 में चीन के विश्व व्यापार संगठन में दाखिल होने के बाद अमेरिका के मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर को भारी घाटा उठाना पड़ा है और चीन ने अमेरिका की 60 हजार फैक्ट्रियों को नुकसान पहुंचाया है। ऐसे में अब अमेरिका चीन से कारोबार में कमी लाएगा और अमेरिकी निवेश के लिए भारत चीन की जगह ले सकता है।

लेकिन इस मामले का एक और पहलू भी है। पिछले दिनों जापान की विश्वविख्यात ब्रोकरेज कंपनी नोमरा ने चीन से पलायन कर रही कंपनियों से संबंधित अपनी नई रिपोर्ट में कहा है कि अप्रैल 2018 से अगस्त 2019 के बीच चीन से 56 बड़ी कंपनियों का पलायन हुआ। इनमें से सिर्फ तीन भारत आई, जबिक सबसे ज्यादा 26 कंपनियों ने वियतनाम में अपना कारोबार शुरू किया। विगत 6 अक्टूबर को अमेरिका के विख्यात संगठन एडवोकेसी ग्रुप द्वारा प्रकाशित

> भारत की श्रमशक्ति का एक सकारात्मक पक्ष यह है कि यहां श्रम लागत चीन की तुलना में सस्ती है। भारत की पहचान प्रतिभाओं के गढ़ के रूप में है

रिपोर्ट के अनुसार करीब 200 अमेरिकी कंपनियां चीन में अपने उत्पादन बंद करके और वहां से अपना निवेश समेटकर भारत की ओर कदम बढ़ा सकती हैं। सैमसंग ने 1 अक्टूबर से चीन में अपना कारोबार समेट लिया है और भारत में अपने मैन्युफैक्चरिंग प्लांट का विस्तार किया है। सोनी कंपनी ने चीन में स्थित अपने स्मार्टफोन 2019 में कॉरपोरेट टैक्स में की गई भारी कमी



चीन छोडकर जाने वाली जापानी कंपनी निन्टेंडो का एक वीडियो गेम

प्लांट बंद करने की घोषणा कर दी है। ऐपल ने के बाद दुनिया की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में चीन

चीन और पश्चिमी देशों को पछाड़कर भारत दुनिया का नया कारखाना बन सकता है। हाल ही में चीन के राष्ट्रीय सांख्यिकी ब्यूरो (एनबीएस) ने कहा है कि चीन में सकल घरेल उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर वर्ष 2018 में घटकर 6.6 फीसदी पर आ गई है। यह दर 1990 से यानी पिछले 28 वर्षों में अब तक की सबसे धीमी दर है। इससे जाहिर है कि चीनी अर्थव्यवस्था में धीमापन आ रहा है। निश्चित केमिकल्स और धातु क्षेत्र में दुनिया की जानी-रूप से गणवत्तापर्ण मैन्यफैक्चरिंग उत्पादन में मानी कंपनियां हैं। आर्थिक और वित्तीय क्षेत्र की चीन से अच्छी स्थिति रखने वाला भारत सितंबर

भी बंगलुरु में अपनी उत्पादन इकाई खोल दी है। की जगह लेने की ओर बढ़ सकता है। वैश्विक विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा गया है कि शोध संगठन स्टैटिस्टा और डालिया रिसर्च द्वारा 'मेड इन कंट्री इंडेक्स- 2018' में उत्पादों की साख के अध्ययन के आधार पर कहा गया है कि गुणवत्ता के मामले में मेड इन इंडिया, मेड इन चाइना से आगे है।

कई आर्थिक मापदंडों पर भारत अभी भी चीन से आगे है। भारत के पास कुशल पेशेवरों की फौज है। आईटी, सॉफ्टवेयर, बीपीओ, फार्मास्युटिकल्स, ऑटोमोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक्स, शानदार संस्थाएं हैं। वैश्विक आर्थिक अध्ययन बता रहे हैं कि भारत आने वाले वर्षों में दवा क्षेत्रों में सबसे तेजी से उभरने वाला देश बनेगा। भारत की श्रमशक्ति का एक सकारात्मक पक्ष यह है कि इस समय भारत में श्रम लागत चीन की तुलना में सस्ती है। भारत की पहचान

प्रतिभाओं के गढ़ के रूप में है। निस्संदेह, मेक इन इंडिया की डगर चुनौतियों से भरी हुई है। लेकिन यदि हम इसे सफल होते देखना चाहते हैं और भारत को दुनिया का नया कारखाना बनाने की इच्छा रखते हैं तो हमें कई बातों पर ध्यान देना होगा। जिस तरह बांग्लादेश, वियतनाम और फिलीपींस जैसे देशों द्वारा चीन से कारोबार समेट रही कंपनियों को अपने देश में आकर्षित करने के सफल प्रयास किए जा रहे हैं वैसे ही प्रयास भारत को भी करने होंगे। हमें शोध, नवाचार और वैश्विक प्रतिस्पर्धा के मापदंडों पर आगे बढ़ना होगा, साथ ही औद्योगिक और श्रम सुधारों के कार्यान्वयन को गतिशील करना होगा। देश में जीएसटी और प्रत्यक्ष कर सरलीकरण के प्रयासों को भी गति देनी होगी।

💶 कारगर कदम जरूरी

अर्थव्यवस्था को डिजिटल करने की रफ्तार बढ़ाना बहुत जरूरी है। सरकार को निर्यात प्रोत्साहन के लिए और अधिक कारगर कदम उठाने होंगे। मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर की अहम भूमिका बनानी होगी। उन ढांचागत सुधारों पर भी जोर देना होगा, जिनसे निर्यातोन्मुख विनिर्माण क्षेत्र को गति मिल सके। बुनियादी संरचना में व्याप्त अकुशलता औक भ्रष्टाचार पर नियंत्रण कर अपने प्रॉडक्ट की उत्पादन लागत कम करनी होगी। देश के उद्योग-व्यवसाय में कौशल प्रशिक्षित युवाओं की मांग और आपूर्ति में लगातार बढ़ता अंतर दूर करना होगा।

दीवार तोड़ कर निकलते थे नवाबों के जनाजे

नुरजहां ने भले जहांगीर के जनाजे के लिए महल की दीवार मजबूरी में तुड़वाई थी, अवध के नवाबों ने इसे उनके द्वारा प्रवर्तित नई रीति की तरह लिया

अवध



जीवनशैली के ही नहीं अजीबोगरीब आदतों और शौकों के किस्से भी आम हैं। इन किस्सों के इतर यह जानना भी दिलचस्प है कि एक समय इन नवाबों के जनाजे की रस्म एक अजीबोगरीब रीति से जुड़

में नवाबों

विलासितापर्ण

गई थी जिसका 'मूडी' कहें या अलबेले मुगल बादशाह जहांगीर के जनाजे से खासा गहरा ताल्लुक था। गौरतलब है कि इतिहासकार जहांगीर को कभी उनकी दरियादिली के लिए याद करते हैं

तो कभी क्रुरताओं के लिए कोसते हैं। अपने अंतिम दिनों में दमे की की बीमारी से राहत लौटते वक्त 28 अक्टूबर, 1627 को उन्होंने राजौरी व भिंभर के बीच चंगेजघट्टी नाम की जगह अंतिम सांस ली। तब अन्य लोगों के अलावा उनकी इतिहासप्रसिद्ध बेगम नूरजहां महल को भी, जो उनकी भतीजी थीं, मशवरा

भी उनके साथ थीं। इंतकाल के बाद जाने क्या बात हुई कि उनकी अंतड़ियां निकालकर वहीं दफना दी गईं। इतिहासकार इस बारे में ज्यादा नहीं बताते। उनके विवरणों में इतना भर दर्ज है कि अंतड़ियां दफनाने के बाद उनके शरीर पर कोई लेप लगाकर उसे बैठने की मुद्रा में पालकी पर चढ़ाया और लाहौर ले जाया गया।

बेगम नूरजहां को डर था कि लाहौर में

कुछ लोग उनके जनाजे के वक्त अंतड़ियों को अलग दफनाये जाने को लेकर विवाद खड़ा कर सकते हैं। वे ऐसा करते तो मरहम बादशाह के राजकीय सम्मान के साथ अंतिम संस्कार में बाधा का सबब बन जाते। इस अंदेशे को दूर करने के लिए अपने विश्वस्तों से सलाह-मशवरे के बाद नूरजहां ने उस महल के पीछे की दीवार तोड़वा दी जिसमें वे जहांगीर के पार्थिव शरीर के साथ ठहरी हुई थीं। फिर जनाजे को उसी रास्ते से बाहर निकलवा दिया। महल के मुख्य द्वार पर उसका इंतजार कर रहे विघ्नसंतोषियों को जब तक यह बात मालूम होती जहांगीर के पार्थिव शरीर को उनके और नूरजहां के पसंदीदा पाने के लिए वे कश्मीर चले गए थे, जहां से दिलकुशा बाग में सुपुर्दे खाक किया जा चुका था। इसके बाद कोई भी विवाद बेमानी था।

कहा जाता है कि बाद में नुरजहां ने अगले मुगल बादशाह शाहजहां की बेगम मुमताज



दिया था कि शाहजहां के इंतकाल के बाद उनके सामने ऐसा कोई अंदेशा पेश आए तो वे उनका जनाजा निकालने के लिए उन्हीं की राह पर चलकर गुपचुप अपने महल की दीवार तोड़वा दें। लेकिन मुमताज महल इस मशवरे पर अमल नहीं कर सकीं क्योंकि शाहजहां से पहले ही जन्नतनशीन हो गईं। शाहजहां ने उनकी याद में आगरे में बेमिसाल ताजमहल जरूर तामीर कराया, लेकिन बाद में बेटे औरंगजेब के हाथों बंदी जीवन को भी

उसी शिया संप्रदाय से थे जिससे बेगम नूरजहां थीं। स्वाभाविक ही नूरजहां इन नवाबों की

रोल मॉडल थीं। इस कारण और भी कि अपने वक्त में नूरजहां के सितारे खासे बुलंद थे और आम बेगमों के विपरीत वे बादशाह जहांगीर के राज-काज में भी खासा दखल रखती थीं। इसे इतिहास की विडंबना ही कहेंगे कि उन्होंने भले जहांगीर के जनाजे के लिए महल की दीवार मजबूरी में तोड़वाई थी, अवध के नवाबों ने इसे उनके प्रभुत्व से जोड़कर उनके द्वारा प्रवर्तित नई रीति की तरह लिया और उस पर 'गौरवान्वित' रहने लगे।

आगे चलकर उनमें यह सोच भी घर कर गया कि दिल्ली में बादशाह जहांगीर का जनाजा महल की दीवार तोडकर निकाला जा सकता है तो लखनऊ में नवाबों के जनाजे भी उसी तर्ज पर क्यों नहीं निकाले जा सकते? ठीक है कि वे बादशाह के नायब हैं लेकिन उनसे किस बात में कमतर हैं?

अवध के सांस्कृतिक इतिहास पर कई पुस्तकें लिख चुके वरिष्ठ संस्कृतिकर्मी रौशन तकी बताते हैं कि इस सोच के तहत न सिर्फ अवध के नवाबों बल्कि उनके अनुयायी शासक वर्ग में भी जनाजों को महलों व घरों की दीवारें तोडकर या पिछले दरवाजे से निकालने की परंपरा बन गई और उसे तभी परिवर्तित बहरहाल, अवध के नवाब मुसलमानों के किया जा सका जब नवाबों के सनहरे दिन खत्म हो गए और बढ़ती चेतना के फलस्वरूप लोग इसे कुरीति के रूप में लेने लगे।



THE SPEAKING TREE

सेवा भावना हमें राग-द्वेष से मुक्त कर देती है

आचार्य रूपचंद्र

दुनिया की जिस किसी भी भाषा में साहित्य रचा जा रहा है, उसमें सबसे ज्यादा जगह संवेदना को हासिल है। लेखक अपने कथानक में चाहे जैसा ताना-बाना बुने, युद्ध का मैदान दिखाए या हिंसा-बर्बरता की पीड़ा महसूस कराए या फिर अराजकता और अत्याचार के परम संसार में विचरण कराए, कथ्य के हृदय-तल में संवेदना और प्रेम का महासागर बहता रहता है। यह आज की बड़ी आवश्यकता भी है। हम कह सकते हैं कि चाहे कितनी भी जटिल और विपरीत परिस्थित हो, साहित्य अपने हृदय में मनुष्यता के लिए प्रेम और आंसू बचा कर रखता है। यही संवेदना है। जहां संवेदना होती है, वहीं प्रेम बसता है और जहां प्रेम होता है संवेदना अनिवार्य रूप से उपस्थित

हमें अब इससे भी आगे बढ़ना होगा। 'सेवा' तक जाना होगा। प्रेम और संवेदना की तरह सेवा भी मनुष्य की एक स्वाभाविक वृत्ति है। आध्यात्मिक परंपरा में साधना के साथ सेवा को भी आवश्यक बताया गया। हमने इसे भुलाया तो नहीं, पीछे जरूर छोड़ दिया। आखिर ऐसा क्यों है कि जब भी सेवा का जिक्र आता है तो हमारी जुबान पर गांधी, मदर टेरेसा, बाबा आमटे सरीखे कुछ ही नाम आते हैं जबिक दुनिया के सभी धर्मों और समाजों ने सेवा की महिमा का गुणगान किया है। यहां तक कहा गया है, 'सेवा-धर्मः परम गहनो योगिना मप्यगम्यं' यानी सेवा-धर्म परम गहन है जो योगियों के लिए भी अगम्य है। योग-साधना में साधक अपनी बंधन-मुक्ति

तथा परमात्म-गति के लिए प्रयास करता है। यह परम स्वार्थ या परमार्थ तक सीमित रहता है जबिक सेवा-धर्म महाकरुणा का असीम विस्तार है जिसमें हम संपूर्ण सृष्टि की संवेदनाओं से अपने को जोड़ते हैं। आचार्य अश्वघोष ने यहां तक कहा है, 'मुझे न राज्य चाहिए, न स्वर्ग और न मोक्ष। दुखों से तृप्त प्राणि-जगत के दुख-क्लेश नष्ट हो जाएं, यहीं मेरी मनोकामना है।' ऐसी कामना कितने लोग करते हैं? दरअसल हमने सेवा की अहमियत को कम कर दिया। किसी भिखारी को दो पैसे देकर, गाय को रोटी या घास खिलाकर, जाड़े की रात में ठिउरते लोगों के शरीर पर कंबल डालकर हम संतुष्ट हो जाते हैं कि 'कर दी सेवा, इसका पुण्य जरुर हासिल होगा।' यह सेवा तो है लेकिन इसमें समग्र समाज की चिंता नहीं है।

कुछ सेवा स्वार्थ की दृष्टि से भी की जाती है कि रुतबा बढ़ेगा, प्रसिद्धि मिलेगी और इसका फायदा मिलेगा। लेकिन यह सेवा स्थायी विकल्प की मांग करती है। जिस समाज में हम रहते हैं, उसके प्रति हमारा भी कुछ सामृहिक उत्तरदायित्व बनता है। जब तक हमारे मन में एक बेहतर समाज की धारणा नहीं बनेगी और अंदर बैठा 'पुण्य-भाव' सामाजिक जिम्मेदारी में नहीं बदलेगा, तब तक सुखी समाज का निर्माण असंभव है।

सेवा में एक अद्भुत गुण है। यह तत्काल राग-द्वेष से मुक्त कर देती है। आप अगर नजर नहीं घुमा पा रहे हैं तो साहित्य के पन्ने पलटें, आपको पता चलेगा कि समाज में किस तरह दुख, अभाव, बीमारी, कुपोषण, अशिक्षा की समानांतर सत्ता बनी हुई है। इससे लड़ने के साथ-साथ बेहतर विकल्प देने की चुनौती बनी हुई है। लेकिन जरूरी है कि हमारे साथ हो आचार्य अश्वघोष, गांधी, मदर टेरेसा, आमटे के निःस्वार्थ सेवा-धर्म की मनस-चेतना।

प्रस्तुतिः रुचि आनंद

अंतिम पत्र

विकल्प और मजबूरी के मुहाने पर खड़े नीतीश सकती है। लेकिन बिहार में बीजेपी के सामने पहली प्राथमिकता सबसे बड़ी ताकत बनना है। ऐसा वह ठीक महाराष्ट्र की तर्ज पर

नरन्द्र नाथ

बीजेपी अध्यक्ष अमित शाह ने बिहार में होने वाले विधानसभा चुनाव से ठीक एक साल पहले बड़ा बयान देते हुए सार्वजनिक तौर पर नीतीश कुमार को एनडीए गठबंधन का चेहरा बता दिया। इस बयान के पीछे अमित शाह का मकसद उस बयानबाजी और सियासी उठापटक पर अभी विराम लगाना था जो आम चुनाव के बाद से ही बिहार में बीजेपी और जेडीयू के बीच जारी है। महाराष्ट्र और हरियाणा विधानसभा के बीच उन्होंने इस विवाद को शांत कर दिया। लेकिन अमित शाह के इस बयान के कई दसरे राजनीतिक मायने भी हैं। उनका यह बयान बिहार की राजनीति की जटिलता, उसकी सीमा और मजबूरी को भी दिखाता है। इसमें बीजेपी की लॉन्ग टर्म प्लानिंग का भी आभास मिलता है। जानकारों के अनुसार यह बयान उतना सहज भी नहीं है जितना लग रहा है और अमित शाह के बयान के बाद अब गोल पोस्ट शिफ्ट होगा।

नेता मानने की वजह

अमित शाह सियासी गणित के मास्टर माने जाते हैं। जाहिर है कि नीतीश को बिहार में एनडीए का नेता मानने के पीछे उनका पूरा सियासी गुणा-भाग है। यह भी सच है कि जब अमित शाह ने नीतीश को नेता मान लिया तो बीजेपी के दूसरे नेताओं के सामने इसे स्वीकार करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। आए दिन जो छोटे-बड़े नेता परोक्ष रूप से नीतीश विरोधी बयान दे रहे थे. अब उस पर विराम लग जाएगा और यह तत्काल दिखने भी लगा है। नीतीश के सबसे प्रखर विरोधी नेता माने जाने वाले केंद्रीय मंत्री

गिरिराज सिंह के भी सुर बदल गए हैं जो बार-बार नीतीश के नेतृत्व को चुनौती दे रहे थे। लेकिन अमित शाह के बयान के अगले ही दिन बिहार बीजेपी के अध्यक्ष संजय जायसवाल का बयान बहुत कुछ संकेत दे गया कि अभी 'पिक्चर' बाकी है। उन्होंने अमित शाह के बयान को आगे बढ़ाते हुए कहा कि अब नीतीश कुमार को भी 'बड़ा दिल' दिखाना चाहिए। संजय जायसवाल के बयान

को पार्टी का आधिकारिक स्टैंड मानना चाहिए। दरअसल बीजेपी नीतीश कुमार को नेता मानने के एवज में बड़ी डील चाहती है। संजय जासवाल का 'बड़ा दिल' कहने के पीछे विधानसभा में सीट शेयरिंग को लेकर अभी से जेडीयू पर दबाव बनाना था। आम चुनाव में बीजेपी ने 'बड़ा दिल' दिखाते हुए जेडीयू को राज्य की



40 सीटों में बराबर 17-17 सीटों पर चुनाव लड़ने पर सहमति जताई। इसके लिए बीजेपी ने जीती हुई पांच सीट भी जेडीयू के पाले में कर दी थी।

अब बीजेपी 'रिटर्न गिफ्ट' के रूप में यही चीज विधानसभा चुनाव में चाहती है। सूत्रों के अनुसार आम चुनाव की तर्ज पर विधानसभा में भी बीजेपी ने जेडीयू को बराबर-बराबर सीटों पर

लड़ने का ऑफर दिया है और इसकी घोषणा पहले ही करने का दबाव भी बनाया है। आम चुनाव से पहले नीतीश कुमार ने भी लगभग साल भर पहले बीजेपी पर दबाव बनाकर सीट शेर्यारंग की घोषणा करा दी थी। अगर विधानसभा चुनाव में बीजेपी और जेडीयू बराबर सीटों पर लड़ने उतरती है तो ऐसा बीजेपी के लिए पहली बार होगा। इन दोनों के अलावा रामविलास पासवान

की लोक जनशक्ति पार्टी भी साझेदार होगी। ऐसे में भले ही नीतीश कुमार एनडीए का चेहरा होंगे, लेकिन ताकत में बीजेपी पहली बार जेडीयू के बराबर हो जाएगी। रामविलास पासवान आम चुनाव के बाद से बीजेपी के अधिक करीबी हो गए हैं। ऐसे में अगर चुनाव बाद बीजेपी के अधिक विधायक चुने जाते हैं तो तस्वीर बदल भी

करना चाहती है जहां शिवसेना से आगे बढ़ते हुए वह अब सीनियर पार्टनर के रूप में स्थापित हो गई है और अपने हिसाब से शर्तें लागू करा रही है। आसान नहीं हैं राहें

अमित शाह के बयान ने नीतीश कुमार को तात्कालिक रूप से तो राहत दे दी है लेकिन उन्हें पता है कि आगे की राह इतनी आसान नहीं है। वह यह भी जानते हैं कि अमित शाह डील करने में पार्टी को पूरी तरजीह देते रहे हैं। कई बार सहयोगियों ने उनकी राजनीति पर परोक्ष आरोप भी लगाया कि वह उनकी ताकत को कमजोर करके बीजेपी को जगह देते रहे हैं। दरअसल आरजेडी-कांग्रेस गठबंधन से अलग होने के बाद जब से नीतीश कुमार बीजेपी खेमे में गए हैं, तबसे उनके संबंध पहले की तरह सरल नहीं रहे हैं। इस बीच राज्य के राजनीतिक हालात भी बदल गए। आम चुनाव में मोदी लहर के नाम पर बिहार में वोट पड़े। आम चुनाव के ठीक बाद मतभेद के कारण जेडीयू मोदी सरकार का हिस्सा नहीं बन सकी। कई मौकों पर बीजेपी नेताओं ने नीतीश कुमार के खिलाफ नाराजगी साफ दिखाई।

पिछले 15 सालों से सत्ता में रहने के बाद राज्य में अब नीतीश कमार के खिलाफ एंटी इनकंबेसी भी स्वाभाविक रूप से सामने आने लगी है। हाल की कुछ घटनाओं से ब्रांड नीतीश भी प्रभावित हुआ है। उनके सुशासन के दावे पर भी काफी सवाल उठे और अब भी उठ रहे हैं। इन घटनाओं के बीच बीजेपी ने उन्हें नेता मानकर पूरी जिम्मेदारी भी उन्हीं पर थोप दी। राज्य सरकार की विफलता को बीजेपी सिर्फ नीतीश कुमार और जेडीयू की विफलता बताने में सफल रही है। दरअसल सत्ता में रहते हुए विपक्ष का स्पेस भी बीजेपी अपने हाथ में रखने में कामयाब रही। वहीं यह भी उतना ही सच है कि नीतीश कुमार बिहार में आज भी राजनीति के बैलेंसिंग फैक्टर हैं। वह आरजेडी गठबंधन और बीजेपी गठबंधन के बीच एक्स फैक्टर भी हैं। यह बात 2015 के विधानसभा चुनाव और 2019 के आम चुनाव में पता भी लग चुकी है। ऐसे में बीजेपी 2015 की गलती दोहराते हुए नीतीश कुमार को कोई मौका नहीं देना चाहती है। बीजेपी ने नीतीश कुमार को नेता तो मान लिया है लेकिन इससे उनकी राह आसान हो जाएगी, फिलहाल ऐसा कहना जल्दबाजी होगा।

www.edit.nbt.in

अपनों की सोचें

22 अक्टूबर को प्रकाशित संपादकीय लेख 'शादी टूटना हो हिंदू तलाक का आधार' पढ़ा। सुप्रीम कोर्टे को अंतिम निर्णय लेने का अधिकार है, लेकिन इस अधिकार का प्रयोग करने से पहले उन दंपतियों के माता-पिता और उनकी संतान के भविष्य के बारे में भी सोचना चाहिए, जिनकी सारी आशाएं इन संबंधों से जुड़ी होती हैं। पति-पत्नी के छोटे से मनमुटाव और ईगो के कारण पूरे परिवार का भविष्य अधर में लटक जाता है। सबसे बडी मुसीबत तो बच्चों की होती है, जिनका पूरा जीवन ही डिस्टर्ब हो जाता है। कोर्ट के

चक्कर काटने से पहले उनको अपने पूरे परिवार और संबंधों के बारे में भी सोचना चाहिए। जुड़ना मुश्किल है, टूटना आसान। जयचंद, ईमेल से

राजनाात

कसाटा

 मंथन करें दोनों पक्ष संपादकीय पेज पर 21 अक्टूबर को प्रकाशित लेख 'समझौता अब भी एक बेहतर विकल्प है' पढ़ा। इस बात से सभी सहमत हैं, क्योंकि यह भी एक रास्ता है जिससे दोनों पक्षों और समुदायों को संतुष्टि मिल सकती है। इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि इतने प्रयासों के बावजूद इस मसले पर मध्यस्थता की पहल सफल नहीं हो पाई है। अब दोनों पक्षों को इस बात पर गहनता से मंथन करना होगा कि अभी तक जितने भी मध्यस्थता के प्रयास हुए हैं उनकी खामियां क्या थीं और वे कैसे दूर होंगी। अगर ऐसा होता है तो देश में एक सकारात्मक संदेश जाएगा और दोनों समुदायों के लोगों में आपसी प्रेम भी बना रहेगा।

गोविंद कुमार, ईमेल से मझधार में कांग्रेस

महाराष्ट्र-हरियाणा कभी कांग्रेस के गढ़ रहे, लेकिन अब इन दोनों राज्यों में कांग्रेस की हालत काफी पतली है। एग्जिट पोल के मुताबिक दोनों राज्यों में बीजेपी और उसकी सहयोगी पार्टियां सरकार बनाने जा रही हैं। कांग्रेस की इस हालत के लिए खुद

कांग्रेसी जिम्मेदार हैं। उनमें चुनाव जीतने की कोई रणनीति नहीं दिखी, नेतृत्व की कमी के साथ ही गुटबाजी हावी रही। बड़े नेता नाराज रहे तो सीटों के गलत बंटवारे के भी आरोप लगे। कांग्रेस का इस तरह से खत्म होना भविष्य के लिए अच्छा नहीं है। विजय तिवारी, ईमेल से

nbteditpage@gmail.com पर अपनी राय नाम-पते के साथ मेल करें।

हत्याएं कम हुईं, लेकिन देश में बढ़े अपहरण – एकं खबर मंदी है भाई, किडनैपिंग में ज्यादा पैसे मिलते हैं।

सुवन चंद्र

वर्ष 73, संख्या 253
आर.एन.आई. मी. 510/57© सर्वाधिकार सुरक्षित। लिखित अनुमति के बिना संपूर्ण था अधिक प्रमुख्या स्थापिकार स्था

और पढ़ने के लिए देखें www.ekda.nbt.in

बिज़नेस स्टैंडर्ड वर्ष १२ अंक २१२

र्डपीएफओ का बकाया

ऐसी जानकारी सामने आई है कि कर्मचारी किए जा सकते हैं। भविष्य निधि संगठन (ईपीएफओ) अपने

प्रथम दृष्ट्या यह विचार समझदारी भरा सदस्यों को यह विकल्प देने पर विचार कर लगता है क्योंकि अधिकांश पेंशन फंड 60 रहा है कि वे मौजूदा 58 के बजाय 60 वर्ष वर्ष की उम्र में ही भुगतान करना आरंभ की उम्र में अपनी पेंशन लेना आरंभ करें। करते हैं। दो वर्ष की यह अतिरिक्त अवधि जो अपनी पेंशन निकासी को दो वर्ष टालने लाभार्थियों की पेंशन को और मजबत बनाने के लिए राजी हो जाएंगे, उनके लिए का काम करेगी। परंतु वास्तविक समस्या अतिरिक्त बोनस जैसे प्रोत्साहन घोषित ईपीएफओ के इस कदम के पीछे के कारण

में निहित है। हाल ही में इस समाचार पत्र में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार सरकार ईपीएफओ को लेकर अपनी प्रतिबद्धताओं को सीमित कर रही है और उसका समेकित बकाया अब 9,100 करोड रुपये हो चुका है। निजी क्षेत्र के कर्मचारी अपने वेतन का 12 प्रतिशत इस कोष में देते हैं और नियोक्ता भी इतना ही अंशदान करता है।

नियोक्ता के अंशदान का 8.33 फीसदी हिस्सा कर्मचारी पेंशन योजना में जाता है जबिक सरकार उन कर्मचारियों के पेंशन अंशदान में 1.6 फीसदी का योगदान करती है जिनका मासिक वेतन 15,000 रुपये से कम होता है।

पेंशन योजना में करीब 4 करोड सक्रिय खाते हैं। सरकार ने 2014 में निर्णय लिया था कि योजना में शामिल सभी लोगों की न्यूनतम मासिक पेंशन बढ़ाकर 1,000 रुपये की जाएगी।

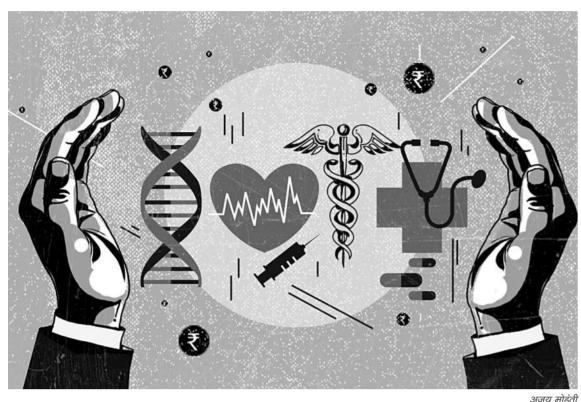
इसके लिए उसने सालाना 800 करोड़ रुपये देने की बात कही थी। ईपीएफओ अपने स्तर पर इस स्थिति में नहीं था कि वह इसका क्रियान्वयन कर सके। बहरहाल. इस मद का फंड भी बकाया है।

यह जानना दिलचस्प है कि बकाया राशि का एक हिस्सा तो सन 1995-96 से ही बकाया है। यही वह वर्ष है जब कर्मचारी पेंशन योजना की शुरुआत की गई थी। यह इस बात का संकेतक है कि देश में वित्तीय प्रबंधन कैसे किया जाता है।

सरकार की यह कोशिश होती है कि व्यय को हरसंभव ढंग से टाला जाए। यह प्रवृत्ति हर क्षेत्र में मौजूद है और इसे समाप्त होना चाहिए क्योंकि इससे कुछ हासिल नहीं होता। इसके उलट, इससे करदाताओं की जवाबदेही में इजाफा हो सकता है। व्यापक स्तर पर देखें तो जैसा कि पहले भी कहा गया है, सरकार को राजस्व और व्यय का उचित आकलन करना चाहिए ताकि पारदर्शिता में सुधार हो। राजकोषीय हालात की बेहतर तस्वीर से सरकार को भी अपना प्रबंधन सुधारने में मदद मिलेगी और वह जरूरी समायोजन कर सकेगी।

ऐसे में मौजूदा संदर्भ की बात करें तो सरकार के लिए बेहतर यही होगा कि वह ईपीएफओ का फंड जारी करे ताकि वह बिना किसी बाधा के अपनी जवाबदेही निभा सके। पेंशन फंड के बारे में कहा जा रहा है कि वह घाटे में है। इसके अलावा सरकार और ईपीएफओ को भविष्य की तैयारी करनी चाहिए। श्रमशक्ति बढ्ने तथा अर्थव्यवस्था के औपचारिक होने के साथ ईपीएफओ का सदस्य आधार बढेगा। व्यय में समायोजन की आवश्यकता हो सकती है ताकि सरकार समय पर अपनी प्रतिबद्धताएं निभा सके।

इसके अलावा ईपीएफओ को भविष्य निधि की ब्याज दर को लचीला रखना होगा। उसे बिना ज्यादा जोखिम के मिलने वाले प्रतिफल के अनुरूप रखना होगा। हमारे देश में मजबूत सामाजिक सुरक्षा ढांचा भी नहीं है। ऐसे में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि पहले से मौजुदा संस्थागत प्रणाली का न केवल संरक्षण किया जाए बल्कि उसका विस्तार



सबकी अच्छी सेहत का लोक वित्त से वास्ता

यदि 'कॉमन गुड्स फॉर हेल्थ' की अवधारणा पर गंभीरतापूर्वक आगे बढ़ा जाए तो इसका राजकोषीय मोर्चे पर यकीनन सकारात्मक असर देखने को मिलेगा। विस्तार से जानकारी प्रदान कर रहे हैं अजय शाह

पुरातन विचार बचाव और उपचार के बीच का तनाव है। ऐसे में आवश्यकता इस बात की है कि 'कॉमन गुड्स फॉर हेल्थ' की दिशा में और अधिक कदम उठाए जाएं। यानी जनसंख्या के आकार के मताबिक हस्तक्षेप किए जाएं जिससे बीमारियों का बोझ कम हो। यह सर्वव्यापी बीमारियों तथा हवा की गणवत्ता के नए खतरों के रूप में हमारे सामने है। देश में पारंपरिक जन स्वास्थ्य के अधुरे एजेंडे में भी इसे महसूस किया जा सकता है। स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले व्यय के कारण सरकार के बढ़ते राजकोषीय खर्च को देखते हुए अब यह आवश्यकता आन पडी है कि इन व्यापक जन समुदाय से जुड़े हस्तक्षेपों को देखते हुए व्यापक राजकोषीय प्रोत्साहन दिया जाए।

स्वास्थ्य नीति के मूल में बचाव बनाम स्वास्थ्य की बहस है। एक ओर जहां स्वास्थ्य सेवा से जुडा समुदाय लोगों के उपचार पर केंद्रित रहता है, वहीं ऐसी तमाम वजह हैं जो उपचार के बजाय बचाव को केंद्र में रखती हैं। आम व्यक्ति की दृष्टि से देखा जाए तो बेहतर यही माना

स्थ्य नीति को लेकर जाता है कि बीमार पडा ही न जाए।

हाल के वर्षों में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 'कॉमन गुड्स फॉर हेल्थ' नामक परियोजना शुरू की जिसका लक्ष्य है आबादी आधारित जन स्वास्थ्य के क्षेत्र में बुनियादी तौर पर नई ऊर्जा का संचार करना। सार्वजनिक आर्थिकी की तकनीकी भाषा में यह सार्वजनिक बेहतरी के क्षेत्र में बाजार की तथा अन्य बाह्य विफलताओं को कवर करता है। 'कॉमन गडस फॉर हेल्थ' एक अच्छा कथन है जिसे आसानी से समझा जा सकता है और यह जन स्वास्थ्य से जुड़े लगभग सार्वभौमिकता के भ्रम को समाप्त करता है।

इबोला जैसी वैश्विक महामारियों, देश में हवा की खराब गणवत्ता अथवा जलवाय परिवर्तन के कारण पर्यावरण में आ रही गिरावट के दुष्परिणामों पर विचार कीजिए। ये सभी अपने आप में बेहद बडी समस्याओं में शामिल हैं। ये लाखों लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाली हैं। अगर हम केवल स्वास्थ्य सेवाओं पर केंद्रित रहे तो यह प्रतिक्रिया अपर्याप्त मानी जाएगी। हम इबोला जैसी महामारी या उत्तर भारत में हवा की खराब गुणवत्ता के शिकार लोगों को केवल इलाज करके ठीक नहीं कर

सकते बल्कि हमें आगे बढकर इन समस्याओं की जड़ पर प्रहार करना होगा। इसके लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य की

बुनियाद मजबूत करनी होगी। उदाहरण के लिए वैश्विक महामारियों से सबसे अच्छा बचाव यह है कि संचारी रोगों से निपटने के लिए जन स्वास्थ्य का बनियादी ढांचा मजबूत हो। इसमें बीमारियों की निगरानी की व्यवस्था, आपातकालीन प्रतिक्रिया, टीकाकरण आदि शामिल हैं। दनिया भर में राजनीतिक और शासन तंत्र आपात परिस्थितियों को प्राथमिकता देते हैं। ऐसे में इन बुनियादों की अनदेखी की जाती है। चिकित्सक, राजनेता और पीड़ितों को स्वास्थ्य सेवाओं का मोल नजर आता है जबिक नजर न आने वाले जन स्वास्थ्य के काम सामने नहीं दिखते जिनमें लोगों के बीमार न पड़ने पर जोर दिया जाता है।

भारत में अभी जन स्वास्थ्य के पुराने एजेंडे पर काफी कुछ किया जाना शेष है। इसमें जल और स्वच्छता, संचारी रोगों की निगरानी और महामारियों अथवा प्राकृतिक आपदाओं से निपटने की संस्थागत क्षमता विकसित करना जरूरी है। आज जो परिस्थितियां मौजूद हैं उन पर नए सिरे से दृष्टि डालें तो वायु गुणवत्ता, सड़क सुरक्षा,

औषधि सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा, जल प्रदूषण और जीवाणु प्रतिरोध के रूप में इसमें नए तत्त्व शामिल हो रहे हैं।

कॉमन गुड्स फॉर हेल्थ और सार्वजनिक वित्त के बीच रोचक संबंध है। सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार से लोगों के बीमार होने में कमी आएगी। इससे स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाला व्यय कम होगा और साथ ही सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं पर पड़ने वाला राजकोषीय दबाव भी सीमित होगा। इससे दुनिया भर की सरकारों द्वारा इसे दी जा रही तवज्जो का औचित्य समझ में आता है। ये सरकारें स्वास्थ्य सेवाओं पर बहुत अधिक धन व्यय कर रही हैं। सरकार किसी स्वास्थ्य सेवा प्रदाता को धन दे या बीमा कंपनी को दे लेकिन आखिरकार इस भुगतान का संबंध स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़ा रहता है। ऐसे में कॉमन गुड़स फॉर हेल्थ के लिए काम करना इन सेवाओं के लिए वित्तीय सुविधा को मजबूत करने और सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवा की व्यवहार्यता के लिए बुनियाद के पत्थर का काम करेगा।

भारत की बात करें तो देश में सरकार समर्थित कई बीमा योजनाओं के आगमन के बाद सरकार के स्वास्थ्य सेवा खर्च में काफी बढ़ोतरी हुई है। ऐसे में इस तरह का रुख अपनाकर इस व्यय तथा राजकोषीय जोखिम को कम किया जा

उक्त एजेंडा कई मंत्रालयों के और एजेंसियों के बीच विस्तारित है। उदाहरण के लिए हवा की गुणवत्ता या सड़क सुरक्षा जैसी समस्याओं का स्वास्थ्य सेवा व्यय पर काफी अधिक असर पडता है। जबिक ये समस्याएं स्वास्थ्य मंत्रालय के दायरे में नहीं आतीं। ऐसे में एक समन्वय प्रणाली की आवश्यकता है ताकि इनसे जुड़ी तमाम जवाबदेहियों का मिलजुलकर निर्वहन किया जा सके। यह काफी हद वैसा ही है जैसे बडी आपदाओं से निपटा जाता है।

मान लेते हैं कि हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं जहां स्वास्थ्य सेवाएं एकदम दुरुस्त तरीके से काम करती हैं। वहां भी उक्त रुख की आवश्यकता है क्योंकि लोग अगर बीमार ही न पड़ें तो यह उनके लिए अधिक बेहतर है।

हमारे देश में स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में तमाम चनौतियां हैं। इसके चलते यहां कॉमन गुड्स फॉर हेल्थ की जरूरत भी अधिक है। कोई व्यक्ति खराब चिकित्सा प्रणाली में जाए. उससे बेहतर है कि वह बीमार ही नहीं पड़े। अगर लोग बीमार नहीं पड़ेंगे तो सरकार पर पड़ने वाला वित्तीय बोझ भी पहले की तुलना में काफी

वैश्विक स्वास्थ्य नीति की बात की जाए तो अल्पावधि में इसमें कोई बदलाव आता नहीं दिखता। विश्व स्वास्थ्य संगठन की 'कॉमन गुड्स फॉर हेल्थ' परियोजना की बात करें तो यह यह सही दिशा में उठाया गया कदम है। माना जा सकता है कि यह विश्व व्यापी स्तर पर स्वास्थ्य नीतियों में बदलाव लाने वाला साबित होगा। भारत जैसे देश में जहां पारंपरिक जन स्वास्थ्य एजेंडे पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है और जहां बीमारियों का बोझ बहुत अधिक है, वहां यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

दादागीरी के सबक : गांगुली से क्या सीख सकते हैं प्रबंधक

सौरभ गांगुली अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट से विदा लेने के 11 साल बाद अपने शानदार करियर में एक और अहम पारी खेलने के लिए तैयार हैं। हालांकि उन्होंने भारतीय कंट्रोल (बीसीसीआई) के अध्यक्ष के रूप में अपनी भूमिका को ज्यादा अहमियत नहीं देते हुए कहा है कि भारतीय क्रिकेट में कप्तान से मुश्किल कोई काम नहीं है। इसमें सच्चाई हो सकती है लेकिन भारत के बेहतरीन कप्तानों में शुमार गांगुली यहां जो करने की कोशिश कर रहे हैं उसे कॉरपोरेट जगत की भाषा में अपेक्षा प्रबंधन कहा जाता है।

बीसीसीआई की कमान संभालना एक दुष्कर कार्य है और गांगुली स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि किसी को भी उनसे चमत्कार की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। खासकर तब जब उनके पास अपना प्रशासनिक कौशल दिखाने के लिए केवल 10 महीने का समय है। बीसीसीआई के संविधान के मुताबिक इसके बाद वह तीन साल के कूलिंग ऑफ पीरियड में चले जाएंगे। अगुआई करने वाले सभी चतुर लोगों की तरह, वह अपने और बीसीसीआई के पदाधिकारियों की नई टीम के लिए उम्मीदों की एक रेखा खींच रहे हैं। बीसीसीआई के सामने अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट कौंसिल (आईसीसी) के साथ सौदेबाजी की ताकत फिर से हासिल करने का दुष्कर काम है। हालांकि इस बात की कम ही संभावना है कि गांगुली के अध्यक्ष रहते बीसीसीआई आसानी से हथियार डाल देगा। ऐसा इसलिए है कि क्योंकि भारतीय टीम का कप्तान रहते हए गांगुली पहले ही टीम बनाने की अपनी क्षमताओं और बडी सोच रखने का पर्याप्त प्रमाण दे चुके हैं जिससे टीम इंडिया को एक जुझारू टीम बनाने में मदद मिली। अपने 12 साल के अंतरराष्ट्रीय करियर में उन्हें लगातार आलोचनाओं का भी सामना करना पडा लेकिन पहले एक खिलाड़ी और फिर कप्तान के तौर पर उन्होंने इनका डटकर मुकाबला किया।

गांगुली ने देश के कुछ प्रमुख प्रबंधन स्कुलों में व्याख्यान दिए हैं और 'ए सेंचुरी इन नॉट इनफ' नाम से एक किताब भी लिखी है। इससे उनकी नेतृत्व क्षमता की थाह मिलती है जो कॉरपोरेट जगत में भी प्रासंगिक है।



श्यामल मजूमदार प्रतिभा को आगे

बढाना

प्रतिभा को पहचानना जरूरी है। लेकिन टीम लीडर का काम यहां से शुरू होता है। गांगुली ने न केवल युवा प्रतिभाओं को पहचाना बल्कि उनका पुरा साथ भी दिया। आईआईएम कलकत्ता में एक व्याख्यान में गांगुली ने कहा कि अगर कोई लीडर एक बार किसी की प्रतिभा का कायल हो गया तो उसे उसके मन से नाकामी का डर हटाकर उसे अपनी प्रतिभा दिखाने का पुरा मौका देना चाहिए। गांगुली ने खुलासा किया कि कैसे उन्होंने 2001 में हरभजन सिंह का साथ दिया था जब चयनकर्ता उन्हें टीम से बाहर करना चाहते थे। उन्होंने कहा, 'मैं युवा खिलाड़ियों को गहरे में उतारने में यकीन रखता था। जो बेहतर थे उन्होंने खुद को संभाला, अपना मुकाम बनाया और चुनौतियों का सामना किया। मैंने हरभजन का साथ दिया क्योंकि मुझे उसमें जुनून दिखा था।' ऑफ स्पिनर हरभजन ने दादा की उम्मीद पर खरे उतरते हुए केवल अपने दम पर ऑस्ट्रेलिया के खिलाफ सीरीज

भरोसा

टीम नेतृत्व करने वाले हर शख्स को कडे फैसले लेने होते हैं लेकिन टीम के सदस्यों को यह विश्वास होना चाहिए कि उनका वजूद विशुद्ध रूप से पेशेवर कारणों से है। इस तरह हर बार जब गांगुली किसी खिलाडी को टीम से बाहर करते थे तो वह चयन समिति के साथ इस मुद्दे पर चर्चा करने से पहले उस खिलाडी को विस्तार से इसके कारण बताते थे। इस तरह खिलाडी जानता था कि कप्तान ने यह फैसला क्यों किया है और उसे यह विश्वास होता था कि अगर उसका प्रदर्शन सुधरता

है तो वह टीम में वापसी कर सकता है। संक्षेप में कहें तो टीम लीडर को ऐसा माहौल बनाना होता है जहां पेशेवर मामलों में व्यक्तिगत समीकरणों का कोई महत्त्व नहीं होता है। शेन वार्न और स्टीव वॉ के बीच व्यक्तिगत संबंध अच्छे नहीं थे लेकिन इसके बावजूद उन्होंने क्रिकेट के मैदान में ऑस्ट्रेलिया के लिए एकदूसरे का पूरा सहयोग किया।

रणनीतिक सोच

गांगुली भारतीय टीम के बारे में इस धारणा को बदलना चाहते थे कि वह केवल घर में ही शेर हैं। अपनी किताब में वह लिखते हैं. 'जिस दिन मैं कप्तान बना, मैंने खुद से कहा कि स्पिनरों को तरजीह देने की दशकों पुरानी नीति को बदलना होगा। मैं पूरी तरह फिट और मजबूत तेज गेंदबाजों की एक टोली बनाना चाहता था और एक नया प्रारूप चाहता था। मैंने कहा कि भारतीय उपमहाद्वीप में स्पिनरों पर जोर रहेगा। लेकिन विदेशों में 20 विकेट लेने की जिम्मेदारी मुख्य रूप से तेज गेंदबाजों पर होगी।' नए प्रारूप में टीम ने विदेशों में जुझारू प्रदर्शन करना था। यह रणनीति काम कर गई और भारत ने गांगुली की कप्तानी में विदेशों में कई यादगार जीत हासिल कीं।

आत्मविश्वास

गांगुली ने एक बार वेस्टइंडीज के महान बल्लेबाज गॉर्डन ग्रीनिज से हुई बातचीत का जिक्र किया था। हर बार जब वह डेनिस लिली, ग्रीम पॉलक जैसे गेंदबाजों के खिलाफ अपनी पारी की शुरुआत करने उतरते थे तो अपने दिमाग से स्लिप क्षेत्ररक्षण को हटा देते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि जब भी उनके दिमाग में यह बात आती कि स्लिप में चार क्षेत्ररक्षक खड़े हैं तो वह तरंत उनमें से किसी एक को कैच थमा देते। यह डर से पार पाने का ग्रीनिज का तरीका था। गांगुली ने कहा कि दुनिया के सबसे सफल सलामी बल्लेबाजों में शामिल ग्रीनिज से मिली सीख से उन्हें यह आत्मबल मिला कि वह हर बार क्रिकेट के मैदान पर सफल होंगे। एक टीम लीडर के मन में कोई शंका नहीं होनी चाहिए और उसे पुरा विश्वास होना चाहिए कि वह परिणाम देगा, चाहे जो हो जाए।

मोदी के बीच अनौपचारिक

बातचीत हुई। चीन के राष्ट्रपति के

इस यात्रा का महत्त्व इसलिए

अधिक हो गया क्योंकि जम्मू

कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाने के

बाद दोनों देशों के शीर्ष नेताओं की

यह पहली मुलाकात थी। इससे

पहले पाकिस्तान के प्रधानमंत्री

इमरान खान भी चीन के राष्ट्रपति

से मिल चुके थे। चीन को कश्मीर

को लेकर हिचक है। वह

पाकिस्तान को एक मोहरे की तरह

इस्तेमाल कर रहा है और लगातार

कश्मीर पर बयानबाजी कर रहा है।

इतिहास को देखने से पता चलता

है कि चीन ने कई बार भारत को

धोखा दिया है। इससे पहले भी जब

मोदी और चिनिफंग की मुलाकात

हुई थी तो डोकलाम विवाद पैदा

हो गया था। चीन कई बार सीमा

का उल्लंघन कर चुका है तथा वह

अक्सर भारत की सीमा पर घुस

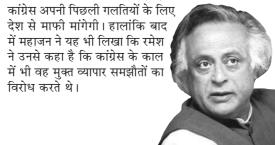
कानाफूसी

बिना लड़े मानी हार?

उत्तर प्रदेश में विधानसभा उप चुनावों को 2022 के विधानसभा चुनाव के पहले प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की परीक्षा के रूप में देखा जा रहा है। इस बीच प्रतीत यही हो रहा है मानो विपक्षी दलों ने भारतीय जनता पार्टी के समक्ष बिना लड़े ही हार मान ली हो। समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी और कांग्रेस ने सभी 11 सीटों पर अपने प्रत्याशी जरूर उतारे लेकिन उनके बडे नेता इस दौरान कहीं नजर नहीं आए। सपा प्रमुख अखिलेश यादव केवल रामपुर में तजीन फातमा का प्रचार करते नजर आए जो पार्टी के मुस्लिम चेहरा माने जाने वाले नेता आजम खान की पत्नी हैं। बसपा अध्यक्ष मायावती और कांग्रेस महासचिव प्रियंका गांधी वाड़ा ने जनसभाओं को संबोधित नहीं किया और वे केवल सोशल मीडिया और प्रेस विज्ञप्तियों की सहायता से आदित्यनाथ सरकार पर हमलावर रहीं।

विरोध की निरंतरता

कांग्रेस नेता जयराम रमेश ने सोमवार को क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी (आरसीईपी) के खिलाफ टवीट किया। उन्होंने लिखा कि नोटबंदी और गलत ढंग से लागू जीएसटी के बाद यह तीसरा झटका है क्योंकि भारत आरसीईपी नामक नया व्यापार समझौता अपनाने जा रहा है। इसके चलते चीन से अधिक आयात होगा जो देश में एमएसएमई को प्रभावित करेगा, न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया से होने वाला डेरी आयात, किसानों और सहकारी संघों को प्रभावित करेगा और मुक्त डेटा प्रवाह से डेटा सुरक्षा प्रभावित होगी। हालांकि आरएसएस के आर्थिक थिंक टैंक स्वदेशी जागरण मंच ने उनके इस विचार का प्रतिवाद किया। मंच के सह समन्वयक अश्विनी महाजन ने कहा कि आसियान एफटीए, भारत-जापान और भारत-दक्षिण कोरिया जैसे एफटीए करने वाली कांग्रेस द्वारा आरसीईपी का विरोध करना अजीब लग रहा है। क्या



आपका पक्ष

युवाओं का पलायन रोकने की जरूरत

युवा का अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से हैं जो अनिवार्य शिक्षा परी करने और पहला रोजगार प्राप्त करने के बीच में है। देश की आबादी 130 करोड़ से अधिक हो गई है और इसका 62 प्रतिशत हिस्सा 59 वर्ष से कम आयु का है। देश की 65 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या 35 वर्ष से कम आयु के युवा वर्ग की है। इस तरह भारत विश्व का सबसे युवा देश है। आजादी के बाद कई दशकों तक रोजगार के अवसरों तक असमान पहुंच और शिक्षा तथा कौशल प्रशिक्षण के मामलों में कोई ठोस एवं प्रभावी नीति नहीं होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं की क्षमता का उचित और रचनात्मक उपयोग नहीं हो पाया है। यह सच है कि शहरी क्षेत्रों में रहने वाले युवाओं को ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं के मुकाबले शिक्षा तथा प्रशिक्षण के पर्याप्त अवसर उपलब्ध होते हैं। लंबे समय तक इस असंतुलन को दूर करने की दिशा में कोई ठोस पहल नहीं की गई। इसके अलावा



उद्यमिता एवं कौशल प्रशिक्षण की सरकारी योजनाओं का फायदा ग्रामीण क्षेत्र के ऐसे युवा उठा पाए जो शहरों में आने जाने तथा वहां रहने का खर्च उठा सकते थे। ग्रामीण युवाओं का सशक्तीकरण गांव के संशक्तीकरण सीधे तौर पर जुड़ा है। ग्राम सशक्तीकरण की गति जितनी तेज होगी और इसका दायरा जितना

ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक समृद्धि के लिए युवाओं का पलायन रोकने की जरूरत है

सशक्तीकरण उतना ही व्यापक और असरदार होगा। लेकिन इस संबंध में एक चुनौती यह है कि उस शिक्षा प्राप्त करने के बाद युवा गांव में नहीं व्यापक होगा ग्रामीण युवाओं का ः रहना चाहता है। वह शहर पलायन कर जाता है। भले ही उसका रहन सहन गांव की तुलना में कम क्यों न हो। इससे देश को दोहरा नुकसान होता है। एक ओर शहरों की बुनियादी सुविधाओं पर अनावश्यक बोझ बढ़ता है तथा दूसरी ओर उसका अपना गांव उपेक्षा का शिकार हो जाता है। अगर युवा शिक्षा और कौशल का उपयोग गांव के विकास और उत्थान के लिए करे तो वह उसे उसी तरह की रफ्तार दे सकता है। वह पूरे गांव की प्रगति की नई राह दे सकता है और उसे समृद्धि के रास्ते पर ले जाने में योगदान दे सकता है।

अनु मिश्रा, सीवान

चीन से रिश्ते में सतर्कता जरूरी

पिछले दिनों तिमलनाडु के महाबलीपुरम में चीन के राष्ट्रपति शी चिनपिंग और प्रधानमंत्री नरेंद्र

जाता है। चीन अरुणाचल प्रदेश पर भी अपना हक जताता है। अत: भारत को चीन के साथ रिश्ते कायम पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर करने में सतर्कता बरतने की शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।

आवश्यकता है। भूपेंद्र सिंह रंगा, पानीपत

करतारपुर का रास्ता

चामा विवादों और सहमति-असहमति के बीच करतारपुर साहिब ग्रद्वारे तक श्रद्धालुओं की पहुंच के लिए भारत और पाकिस्तान के बीच होने वाला समझौता दोनों देशों के रिश्तों में नए युग की शुरुआत से कम नहीं माना जाना चाहिए। करतारपुर गलियारे का रास्ता खुलना और इसके लिए पाकिस्तान के साथ होने वाला समझौता दोनों देशों के बीच जमी बर्फ को पिघलाने का काम कर सकता है। लंबे समय से भारत और पाकिस्तान के रिश्तों में जो तनाव बना हुआ है, उस स्थिति में यह समझौता होना बड़ी बात है। हालांकि इस समझौते के साथ भारत ने पाकिस्तान से यह उम्मीद की थी कि वह हर तीर्थयात्री से बीस डॉलर का सेवा शुल्क लेने का फैसला टाल दे। लेकिन पाकिस्तान इस शुल्क को लेने पर अड़ा हुआ है। इससे हर श्रद्धालु पर करीब डेढ़ हजार रुपए का अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। वैसे इस मौके पर पाकिस्तान थोड़ी-सी दरियादिली दिखाए और इस शुल्क को वापस ले ले तो इससे उसका कोई बहुत भारी नुकसान नहीं होने वाला है, बल्कि सिख समुदाय और भारत के मन में उसके प्रति एक जगह ही बनेगी। यह कोई कारोबारी समझौता तो है नहीं जिसमें नफा-नुकसान देखा जाए, बल्कि धार्मिक पर्यटन के तहत रियायत दी जा सकती है। लेकिन भारत ने फिलहाल अपनी ओर से इसे कोई ऐसा मुद्दा नहीं बनाया है जिससे कि समझौते के रास्ते में कोई बाधा पैदा हो।

कश्मीर सहित कई मुद्दों को लेकर समय-समय पर भारत और पाकिस्तान के बीच रिश्ते नाजुक दौर में पहुंचते रहे हैं। करगिल युद्ध से ठीक पहले दोनों देशों के बीच लाहौर-दिल्ली बस सेवा शुरू हुई थी। उसके बाद मुनाबाव-खोखरापार रेल लिंक और श्रीनगर-मुजफ्फराबाद बस सेवा के लिए समझौता हुआ था। लेकिन इस साल पुलवामा में सीआरपीएफ के काफिले पर आतंकी हमले के बाद भारत ने पाकिस्तान से रिश्तों में सुधार की सारी उम्मीदें छोड़ दी थीं। जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 को खत्म किए जाने के बाद से तो दोनों देशों के बीच युद्ध जैसे हालात बन गए और पाकिस्तान ने परमाणु युद्ध तक की धमकी दे डाली। लेकिन इतना सब होते हुए भी अगर पाकिस्तान ने भारतीय सिखों के लिए करतारपुर साहिब गलियारे का रास्ता खोला है तो इससे काफी उम्मीदें बनती हैं।

सिखों के लिए करतारपुर का यह गुरद्वारा एक पवित्र स्थान है। अभी तक लोग सीमा के पास से दूरबीनों से ही इसकी झलक भर देख पाते हैं। लेकिन भारत सरकार की सतत ठोस पहल और पाकिस्तान के सकारात्मक रुख से गलियारे का निर्माण हुआ और गुरद्वारे तक पहुंचने का रास्ता बना। यह गुरद्वारा अंतरराष्ट्रीय सीमा से मात्र साढ़े चार किलोमीटर की दूरी पर है। भारत ने अपने यहां से जाने वाले श्रद्धालुओं को सीमा के पास बड़ी सुविधाएं देने की तैयारी कर ली है। फिलहाल पाकिस्तान ने पांच हजार तीर्थयात्रियों को इजाजत देने का फैसला किया है। हालांकि तीर्थयात्रियों की संख्या पर किसी तरह के प्रतिबंध का कोई औचित्य नजर नहीं आता। करतारपुर साहिब तक श्रद्धालुओं को जाने देने का मामला दो दशक पहले से चला आ रहा था। 1999, 2004 फिर 2008 में भारत ने इस मुद्दे को पाकिस्तान के समक्ष उठाया था, लेकिन पाकिस्तानी हुकूमत की हठधर्मिता के कारण सारी कोशिशें बेकार गईं। इसलिए करतारपुर गलियारे पर होने जा रहा समझौता गुरुनानक देव के पांच सौ पचासवें जन्मदिन के मौके पर सिख समुदाय के लोगों के लिए किसी बड़े उपहार से कम नहीं है।

लेटलतीफी की पटरी

🔁 श में ट्रेनों का अपने निर्धारित समय के मुकाबले देरी चलना एक आम बात मानी जाती है और इसे लेकर आम लोग सहज हो चुके हैं। जबिक हर ट्रेन के प्रस्थान और गंतव्य तक पहुंचने के लिए एक समय-सारिणी तय है और उम्मीद की जाती है कि यात्रियों का सफर वक्त पर पूरा हो। मूल्य चुका कर सेवा लेने के सिद्धांत के लिहाज से देखें तो ट्रेनों के मामले में यह नियम भी होना चाहिए कि यात्रियों को समय से उनके गंतव्य तक पहुंचाने का वादा पूरा किया जाए। लेकिन भारत में अब तक ट्रेनों की लेटलतीफी के मामले जगजाहिर रहे हैं। इसके उलट करीब एक पखवाड़े पहले शुरू हुई पहली निजी या कॉरपोरेट ट्रेन तेजस एक्सप्रेस के मामले में जो नियम-कायदे तय किए गए हैं, उसमें इस बात का खयाल रखा गया है कि यह गाड़ी न केवल हर हाल में निर्धारित समय पर अपने गंतव्य पर पहुंचे, बल्कि अगर किन्हीं वजहों से देरी होती है तो उसके एवज में यात्रियों को मुआवजा चुकाया जाएगा। अपने शुरू होने के बाद से यह ट्रेन आमतौर पर समय पर चल रही थी, लेकिन बीते उन्नीस अक्तूबर को यह लखनऊ से चल कर करीब तीन घंटे की देरी से दिल्ली पहुंची। अब इसके लिए तय नियमों के तहत यात्रियों को मुआवजा चुकाया जाएगा।

भारतीय रेलवे के इतिहास में यह पहली घटना है जब ट्रेन के लेट होने पर यात्रियों को हर्जाना चुकाया गया है। जाहिर है, इसके लिए 'सेवा में कमी' जैसी स्थितियों और इसकी भरपाई के कायदे को आधार बनाया गया होगा। लेकिन यह तब संभव हो सका है जब किसी ट्रेन को भारतीय रेलवे की एक सहायक कंपनी आइआरसीटीसी के तहत चलाया गया। वरना यह कोई छिपा तथ्य नहीं है कि आज कितनी ट्रेनें समय पर अपने गंतव्य पहुंच पाती हैं और देरी की स्थिति में रेलवे यात्रियों के प्रति कोई अतिरिक्त जिम्मेदारी नहीं उठाता। सवाल है कि बाकी ट्रेनों के मामले में सेवा में कमी का नियम क्यों लागू नहीं होता और इसे कोई गंभीर मामला क्यों नहीं माना जाता। यह विचित्र है कि एक ओर तेजस एक्सप्रेस के देरी से पहुंचने पर यात्रियों को मुआवजा चुकाने का मामला सामने आया, वहीं सूचना के अधिकार कानून के तहत उजागर एक जानकारी के अनुसार चालू वित्त वर्ष के पहले छह महीने के दौरान तमाम रेलगाड़ियों के वक्त पर पहुंचने का औसत लगातार खराब हुआ है। इस मामले में न केवल साधारण यात्री गाड़ियों का, बल्कि राजधानी, शताब्दी, गरीब रथ और सुविधा जैसी सुपरफास्ट श्रेणी की रेलगाड़ियों का प्रदर्शन खराब हुआ है।

ऐसे सवाल अक्सर उठते रहे हैं कि एक ही मार्ग पर एक ट्रेन अपने निर्धारित समय में कैसे पहुंच जाती है और दूसरी गाड़ियां कई-कई घंटे देर क्यों हो जाती हैं! साधारण और एक्सप्रेस श्रेणी की ट्रेनों के मुकाबले राजधानी और शताब्दी जैसी गाड़ियों के देर से पहुंचने की नौबत अपेक्षया कम आती रही हैं। अब यह स्थिति तेजस एक्सप्रेस के मुकाबले शायद बाकी सभी गाड़ियों की बन रही है। लेकिन अगर ताजा घटना को ध्यान में रखें तो इस बात की भी क्या गारंटी है कि भविष्य में तेजस एक्सप्रेस की लेटलतीफी भी आम नहीं हो जाएगी और इसके लिए यात्रियों को मुआवजा चुकाना पड़ेगा। खबरों के मुताबिक सरकार आने वाले वक्त में तेजस एक्सप्रेस की तर्ज पर ही देश की करीब डेढ़ सौ ट्रेनों और पचास रेलवे स्टेशनों को निजी हाथों में सौंपने की तैयारी में है। सवाल है कि भारतीय रेलवे के मौजूदा तंत्र में ही तेजस एक्सप्रेस या निजी कंपनी की ट्रेनों के समय पर संचालन के लिए व्यवस्थागत किमयों को दूर किया जा सकता है तो दूसरी तमाम ट्रेनों के मामले यह क्यों नहीं हो सकता!

कल्पमधा

अगर चिड़ियां एका कर लें, तो शेर की खाल खींच सकती हैं।

- शेख सादी

शिक्षा की गुणवत्ता और सवाल

लालजी जायसवाल

भारत में प्राथमिक शिक्षा शुरू से उपेक्षित रही है। यहां शिक्षा के प्राथमिक स्तर को दरिकनार किया जाता है। इसका उदाहरण देश के तमाम राज्यों में देखा जा सकता है। प्राय: ऐसी अनेक घटनाएं हुई हैं जब इन स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षक तक देश के प्रधानमंत्री का नाम नहीं बता सके। जाहिर है, जैसी शिक्षा दी जाएगी, बच्चों का विकास भी वैसा ही होगा।

भारत में शिक्षा क्षेत्र की स्थिति संतोषजनक नहीं है। उच्च शिक्षा क्षेत्र में लगातार गिरावट यह प्रदर्शित करती है कि भारत में अभी भी विशेष शैक्षणिक सुधार की आवश्यकता है। नीति आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2016-17 के दौरान स्कूली शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक में देश के बीस बड़े राज्यों में केरल शीर्ष स्थान पर रहा, जबकि इसके बाद राजस्थान और कर्नाटक क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर रहे। रिपोर्ट के अनुसार सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य उत्तर प्रदेश इस मामले में सबसे निचले पायदान पर है। 'द सक्सेस आफ आवर स्कूल्स- स्कूल एजुकेशन क्वालिटी इंडेक्स' (एसईक्युआइ) में 2016-17 को संदर्भ वर्ष और 2015-16 को आधार वर्ष के रूप में माना गया है। इस सूचकांक को स्कूल शिक्षा क्षेत्र में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए विकसित किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार छोटे राज्यों

में मणिपुर, त्रिपुरा और गोवा को क्रमशः पहला, दूसरा और तींसरा स्थान मिला है। इसके बाद मिजोरम, नगालैंड, सिक्किम, मेघालय और अरुणाचल प्रदेश का स्थान आता है।

आज भी शिक्षा के स्तर में कोई विशेष सुधार प्रतिबिंबित नहीं हो पा रहे हैं, क्योंकि कुछ वर्षों पहले जिन राज्यों का जो स्थान था, आज भी वे राज्य उन्हीं स्थानों पर बने हुए हैं। इसीलिए आज उच्च शिक्षा के स्तर में भी लगातार गिरावट आ रही है। इसकी जड़ें प्राथमिक शिक्षा में निहित हैं। जब तक प्राथमिक शिक्षा में सुधार नहीं लाया जाएगा, तब तक उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को सुधार पाना संभव नहीं है। यदि प्राथमिक शिक्षा के स्तर की गुणवत्ता में सुधार कर लिया जाए, तो उच्च शिक्षा की दशा और दिशा में सुधार का रास्ता आसान हो सकता है। स्कूली शिक्षा की स्थिति चिंताजनक है। देश भर में लगभग अस्सी लाख बच्चे छह से चौदह वर्ष की आयु वर्ग में शामिल हैं

जो स्कूल नहीं जा पाते हैं। लाखों बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं। इसलिए सवाल उठता है कि आखिर क्या कारण हैं कि हम स्कूली शिक्षा की समस्याओं से निपट पाने में नाकाम रहे हैं।

शिक्षा सुधार के उपायों की दिशा में हमें अन्य देशों के मॉडलों से सीख लेने की जरूरत है। शिक्षा स्तर में सुधार की एक तरकीब दक्षिणी कोरिया और फिनलैंड से ली जा सकती है, क्योंकि इन देशों में प्राथमिक शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता है। इन देशों में शिक्षा के क्षेत्र सबसे खास बात यह है कि प्राथमिक शिक्षकों का वेतन एक प्रोफेसर के वेतन से भी अधिक होता है। ऐसा मानना है कि अगर शिक्षा की नींव अर्थात निचला स्तर मजबूत कर दिया जाए तो उच्च स्तर पर कोई

विशेष परिश्रम नहीं करना होगा। इसी कारण इन देशों पिछड़ते जा रहे हैं। पर्याप्त ज्ञान और कौशल का की शिक्षा व्यवस्था 'नीचे से ऊपर'(डाउन ट्टॉप) मॉडल पर आधारित है। लेकिन भारत मे ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बन सकी है। भारत में प्राथमिक शिक्षा शुरू से उपेक्षित रही है। यहां शिक्षा के प्राथमिक स्तर को दरिकनार किया जाता है। इसका उदाहरण देश के तमाम राज्यों मे देखा जा सकता है। प्रायः ऐसी अनेक घटनाएं हुई हैं जब इन स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षक तक देश के प्रधानमंत्री का नाम नहीं बता सके। जाहिर है, जैसी शिक्षा दी जाएगी, बच्चों का विकास भी वैसा ही होगा। ऐसे ही तमाम कारणों से प्राथमिक शिक्षा क्षेत्र एक तरह से चौपट हालत में पहुंच गई है। आज सरकारी शैक्षिक संस्थाओं में शिक्षा की

घटती गुणवत्ता ने देश के भविष्य को एक ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है जिसके दोनों और खाई है। देश के लगभग सत्तर प्रतिशत युवा आज भी सरकारी शिक्षण संस्थानों में पढ़ रहे हैं, लेकिन शैक्षिक स्तर का निरंतर पतन मानवीय क्षमता को प्रभावित कर रहा है। शिक्षा के स्तर में आई गिरावट का एक बड़ा कारण शिक्षकों की अनुपस्थिति भी है। इससे केवल सरकारी पैसों का दुरुपयोग हुआ है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रति वर्ष होने वाले इस नुकसान का अनुमान दो अरब डॉलर है। विद्यालयों के प्रत्येक स्तर पर शिक्षकों की अनुपस्थिति का यही हाल है। इसमें वंचित वर्ग के युवाओं को सबसे अधिक नुकसान होता है। अध्यापन में शिक्षकों की बढ़ती उदासीनता देश के भविष्य को अंधकार की ओर धकेल रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि युवा सिर्फ डिग्री ले रहे हैं और ज्ञान के मामले में



अभाव भी बेरोजगारी का एक बड़ा कारण है।

एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि पिछले साल लगभग एक करोड़ रोजगार के अवसर कम हुए हैं। निश्चित ही यह देश के लिए बड़ा नुकसान है। एक और गंभीर चिंता का विषय यह भी है कि आज उच्च स्तरीय रोजगार के अवसर भी कम होते जा रहे हैं। ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन की रिपोर्ट बताती है कि वर्ष 2015-2016 से उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षकों की भर्ती में भारी गिरावट आई है। पिछले तीन वर्षों में आरक्षित स्थायी पदों में यह गिरावट सबसे ज्यादा देखने को आई है। रोजगार के शैक्षिक स्तर में अनुकूल बढ़ोतरी न हो पाने से लोगों का शिक्षा

के प्रति रुझान कम हुआ है। वर्ष 2018 के उत्तरार्ध में पचपन फीसद से अधिक कार्यरत युवाओं ने दसवीं की शिक्षा तक भी पूरी नहीं की थी। इसलिए बेरोजगारी का प्राथमिक और उच्च शिक्षा से गहरा संबंध है।

अधिकतर विकसित देशों में प्रत्येक विद्यार्थी के हिसाब से अनुदान दिया जाता है। इससे विद्यालय और शिक्षकों दोनों की ही एक जिम्मेदारी बढ़ जाती है कि वे अच्छी शिक्षा देकर ज्यादा से ज्यादा विद्यार्थियों की भर्ती करें, क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी के साथ विद्यालय के अनुदान का कुछ भाग दांव पर लगा होता है। साथ ही अंतर्विद्यालय प्रतियोगिता के जरिए विभिन्न विद्यालयों के बच्चों के शैक्षणिक स्तर को जांचा जा सकता है। इन प्रतियोगिताओं की समस्त जानकारी को वेबसाइट के माध्यम से अभिभावकों तक पहुंचाया जा सकता है। दरअसल हमारी शिक्षा व्यवस्था का एक बड़ा दोष यह रहा है कि हम शिक्षकों को उत्तरदायी नहीं बना पाए हैं।

> एक निश्चित पैटर्न पर अपना पाठ्यक्रम पूरा करवा कर वे छुट्टी पा लेते हैं। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदें में शिक्षकों के उत्तरदायित्वों को बढाने की महती आवश्यकता है।

> शिक्षकों को जवाबदेह बनाने के लिए कुछ विदेशी मॉडलों को अपनाया जा सकता है। जैसे वाउचर प्रणाली को लागू करना। इसमें अभिभावकों को एक बाउचर दिया जाता है। अगर वे स्कूल के शिक्षकों से संतुष्ट हैं तो वे वाउचर को स्कूल या शिक्षक के खाते में जमा कर सकते हैं। अन्यथा अभिभावक अपने बच्चे को उस स्कूल से निकाल कर दूसरे स्कूल में भर्ती करवा सकते हैं। आर्थिक नुकसान के डर से स्कूल और शिक्षक दोनों ही उत्तरदायित्व के साथ काम करेंगे। वाउचर प्रणाली से निजी विद्यालयों में आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग को अपने लिए आरक्षित पच्चीस प्रतिशत सीटों का लाभ भी मिल सकेगा। इसलिए

शिक्षकों को उत्तरदायित्वों की सीमा में बांधना स्कूल में उनकी अनुपस्थिति को सुनिश्चित करेगा।

सरकार को चाहिए कि बोर्ड परीक्षा दसवीं के बजाय ग्यारहवीं में ले और बारहवीं को विश्वविद्यालय शिक्षा के लिए तैयारी का वर्ष बनाया जाए। इस प्रकार की व्यवस्था से विद्यार्थियों की समीक्षात्मक क्षमता और आलोचनात्मक सोच, शोध तथा अनुसंधान जैसे गुणों से लैस किया जा सकेगा, जो उनकी उच्च शिक्षा में गुणवत्ता ला सकेगा। इसी से उनकी आगे की जिंदगी भी सफल और सार्थक बन सकेगी। अगर राजनीतिक इच्छा शक्ति प्रबल हो तो शिक्षा के क्षेत्र में बहुत से सुधार करके उसकी गणवत्ता को सधारा जा सकता है।

अकेले हम अकेले तुम

रजनीश जैन

37पने विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'एकांत के सौ बरस' में गेब्रियल गार्सिआ मार्खेज ने लिखा है- 'सुखद वृद्धावस्था के लिए आपको एकांत के साथ सम्मानीय समझौता कर लेना चाहिए'! गेब्रियल इस कथन में जीवन की शाम को सम्मानजनक ढंग से बिताने का राज बताते हुए दरअसल इस अवस्था पर तंज करते हुए भी प्रतीत होते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उम्र के इस दौर की हजारों कहानियां और उनके पात्र हमारे चारों और बहुतायत में मौजूद हैं। उपेक्षित और अकेलेपन से जूझते हुए। कुछ वर्ष पहले एक जाने-माने संगठन ने उम्र की अंतिम दहलीज पर खड़ी पीढ़ी की मानसिक और शारीरिक जरूरतों पर सर्वेक्षण किया था। जैसी कि उम्मीद थी, परिणाम दिल दहलाने वाले आए थे। अकेले भारत में ही पैंसठ प्रतिशत से अधिक बुजुर्ग अपनों की ही उपेक्षा का शिकार हो रहे हैं। इसी प्रकार एक तिहाई बुजुर्ग शारीरिक और शाब्दिक हिंसा झेलने को मजबूर है। इसी सर्वेक्षण ने यह भी उजागर किया कि भारत में हर चौथे बुजर्ग का उसके ही परिवार ने आर्थिक या मानसिक शोषण किया है। पराए लोगों से दुख मिलता है तो लोग अपनों की ओर उम्मीद भरी

नजरों से देखते हैं। लेकिन जब अपने ही दुख देने लगें या फिर उपेक्षा करने लगें तब क्या किया जाए!

धर्म और राजनीति की चर्चा से भरे मीडिया में यदाकदा संवेदनशून्यता की ऐसी भी कहानियां सामने आ जाती हैं, जहां विदेश में बसे पुत्र को घर लौटने पर महीनों अंदर से बंद मकान में अपनी मां का अस्थि-पिंजर मिला! कभी समर्थ रहे लोगों की नजरअंदाजी का दृश्य हमारे समाज में आम होता जा रहा है। बुजुर्गों के

प्रति लापरवाही और हिकारत की घटनाएं हमारे आसपास इतने बड़े पैमाने पर होती हैं कि बारंबार होने की वजह से वे समाज के मानस को वैसे नहीं झझकोरती जैसा किसी अन्य घटना पर लोगों के बीच उबाल देखने को मिलता है। न ही इस तरह की घटनाओं को मीडिया माध्यमों में अपेक्षित स्थान

को अपना शिकार नहीं बनातीं! हाल का एक उदाहरण बानबे वर्षीय नामचीन संगीतकार वनराज भाटिया का है। वरिष्ठ अभिनेता कबीर बेदी के ट्वीट से दुनिया को मालूम हुआ कि अपने समय के प्रतिभाशाली संगीतकार वनराज भाटिया आर्थिक और शारीरिक परेशानियों के चलते नारकीय जीवन जीने को मजबूर हैं। मुख्यधारा के सिनेमा से

मुद्दों का मुद्दा

स्थानीय मुद्दे गायब रहे। लेकिन फिर भी जागरूक

मतदाता अपना कर्तव्य नहीं भुले और मतदान के लिए

लंबी-लंबी कतारें लगी रहीं। प्रत्यक्ष रूप से यह सही लग

रहा है कि भारी मतदान हमारे लोकतंत्र की सुदृढ़ता और

समृद्धता का परिचायक है। लेकिन जब स्थानीय मृद्दे ही

गायब रहें, स्थानीय मुद्दों पर चुनाव ही न हो तो चुने गए

विधायकों की सफलता, असफलता का आकलन किस

जहां तक कांग्रेस की शिकायत का प्रश्न है कि भाजपा

आधार पर किया जा सकेगा. यह बडा सवाल है।

महाराष्ट्र और हरियाणा के विधानसभा चुनावों में

मिलता है, जब तक कि वे किसी स्थापित शख्सियत

इतर कालजयी कला फिल्मों 'अंकुर', 'भूमिका' 'जुनुन', '36 चैरंगी लेन', 'मंडी', 'जाने भी दो यारो' और रेडियो जिंगल के लिए कर्णप्रिय संगीत रचने वाले वनराज भाटिया उन चुनिंदा संगीतकारों में शुमार हैं, जिन्होंने भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ पश्चिमी क्लासिकल म्युजिक की विधिवत शिक्षा हासिल की है। रॉयल अकादमी से शिक्षित वनराज भाटिया लंदन से गोल्ड मेडल लेकर लौटे हैं। अस्सी के दशक से टेलीविजन देख रहे दर्शकों के

दुनिया मेरे आगे लिए वनराज का नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है। 'भारत एक खोज', 'यात्रा', 'तमस' जैसे अविस्मरणीय धारावाहिकों में संगीत रचने वाले वनराज उम्र की ढलान पर अकेलेपन और अवेहलना से जूझ रहे हैं।

रोशनी के घेरे में चुनचुनाती चंचल छवियों के पीछे कितना अंधेरा है, इससे देश और दर्शक इत्तिफाक नहीं रखता। अक्सर वे ही लोग स्मृतियों में रहते हैं, जो रोशनी की जद में होते हैं। 'स्पॉटलाइट' हटते ही उनकी खैर खबर पूछने वाला कोई नहीं होता। वनराज इस लिहाज से किस्मत वाले है कि उन्हें तूरंत आर्थिक सहायता मिल गई, अन्यथा अतीत में अपने जमाने के सुपर स्टार भगवान दादा, भारत भूषण, अचला सचदेव, 'लगान' आदि फिल्मों के ईश्वर काका (श्रीवल्लभ

व्यास) हिंदी फिल्मों में नायिका की छवि को आधुनिकता का तड़का देने वाली परवीन बॉबी, दक्षिण फिल्मों के चिर-परिचित खलनायक रामी रेडडी, संजय दत्त को बॉडी बिल्डिंग के लिए प्रेरित करने वाले गेविन पैकार्ड आदि इतने भाग्यशाली नहीं थे। इन लोगों के अंतिम समय में इनकी पूछ-परख करने वाला कोई नहीं था। दो सौ से अधिक फिल्में कर चुके चरित्र अभिनेता एके हंगल की सुध भी तब ली गई थी, जब अखबारों में उनकी बिगड़ती तबियत और आर्थिक स्थिति के बारे में लिखा गया था।

अर्नेस्ट हेमिंग्वे के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास 'द ओल्ड मैन एंड द सी' का बूढ़ा नायक सेंटिएगो यही संदेश देता है कि जीवन और मृत्यु अटल सत्य है, लेकिन जिजीविषा का उम्र से कोई लेना देना नहीं है। हमारे आसपास ऐसे बुजुर्ग मिल जाते हैं जो घर से लेकर बाहर, जहां भी जाएं उन्हें अपने प्रति लोगों की दूरी महसूस करनी पड़ती है। पश्चिम की तर्ज पर हर बड़े शहर में वृद्धाश्रमों का बनते जाना इंगित करता है कि हमारी तथाकथित संयुक्त परिवार प्रणाली की मियाद अब पूरी होने की तरफ बढ़ने लगी है। आज जो युवा हैं, उनके लिए यह याद रखना जरूरी है कि एक दिन वे भी उम्र के उस मोड़ पर अपने को खड़ा पाएंगे, जहां मौजूदा उपेक्षित पीढ़ी खड़ी है।

लोकतंत्र के सामने

भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य है, जिसमें संविधान सर्वोपरि है। भारत के संविधान ने अपने समय के लंबे इम्तिहान को पार करते धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, न्याय, स्वतंत्रता और भाईचारे जैसे आदर्शों के साथ एक मजबूत लोकतंत्र स्थापित किया है। लेकिन आज हकीकत यह है कि भारत हर दिन लोकतांत्रिक आदर्शों से दर सरकता जा रहा है, संवैधानिक लोकतंत्र की कोई न कोई ईंट खिसकती जा रही है, लोकतांत्रिक मर्यादाओं को ताक पर रख दिया गया है और जातिवाद, सांप्रदायिकता, क्षेत्रवाद, हिंसा तो जैसे आम बात हो गई है। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों के ध्रुवीकरण ने राजनीति की दिशा को मोड दिया है। ऐसे में यह लगता है कि संविधान में भाईचारा, धर्मनिरपेक्षता जैसे आदर्श शब्द अर्थविहीन हो गए हैं।

बाबासाहेब डाक्टर भीमराव आंबेडकर ने कहा था कि जब तक सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र का निर्माण नहीं होता, तब तक संसदीय लोकतंत्र अर्थहीन है। हालात बता रहे हैं कि आज भारत में केवल राजनीतिक लोकतंत्र है, सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र नहीं है। ऐसे में बड़ा सवाल यह है कि यदि राजनीति इसी तरह चलती रही तो क्या लोकतंत्र खत्म नहीं हो जाएगा? अगर ऐसा हुआ तो उसके लिए जिम्मेदार सिर्फ जनता और विपक्षी दल होंगे, क्योंकि आज जनता और विपक्ष मात्र मजमा बन कर रह गए हैं। विपक्ष अपनी जिम्मेदारी चुनाव लड़ने तक ही समझता है। क्या चुनाव के बाद उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है ? आज पार्टियों को मात्र चुनाव जीतने से मतलब रह गया है। चुनाव हारी हुई पार्टी अपनी जिम्मेदारी नहीं समझ रही। लोकतंत्र पर सबसे बड़ा खतरा यही है।

• धर्मेंद्र जांगिड़, दिल्ली विवि

हकीकत को देखें

पिछले तीन-चार सालों से यही बात गुंजायमान हो रही है कि जो काम पिछले पचास सालों में नहीं हुआ, वह पांच सालों में कर दिखाया। अब समझ में नहीं आता कि जब भी देश में कोई मुद्दा या समस्या उभर कर आती है तो

उसके लिए पूर्ववर्ती सरकार को ही जिम्मेदारी ठहरा दिया जाता है। जब पचास सालों में जो विकास या तरक्की हुई ही नहीं, और वह सिर्फ पांच सालों में ही हुई तो फिर को छिपाने की कोशिश नहीं है? कहते हैं कि गड़े मुर्दे उखाड़ने से कोई लाभ नहीं होता। वर्तमान में देश के समक्ष उभरी समस्याओं का सामना हमें ही करते हुए उसका उचित निदान करना होगा। उदाहरण के लिए इसी खबर को लें कि भुखमरी जैसी समस्या

से निपटने में भारत पाकिस्तान और

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-८, सेक्टर-7, नोएडा २०१३०१, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

बांग्लादेश से भी पीछे है। जिस पाकिस्तान को हम टीवी विधानसभा के चुनाव में राष्ट्रीय मुद्दे उभार कर जनता को चैनलों पर भिखमंगा, भिखारी, फकीर कह कर निंदा कर बरगला रही है, यह बेबुनियाद और गलत आरोप है। चुनाव रहे हैं, अब भुखमरी पर आई वैश्विक रिपोर्ट क्या साबित में मुख्य ध्येय होता है, जनता का मत प्राप्त करना। अगर करती है, यह हमें सोचना चाहिए। हमें जो हकीकत है, राष्ट्रीय मुद्दे चुनाव मे उठाना गलत है तो चुनाव आयोग इस उसका सामना करना चाहिए, उससे बचा नहीं जा सकता। पर कार्रवाई करेगा। कांग्रेस तो गलती न करती और आखिर पीतल पर कब तक सोने की परत चढा कर हम स्थानीय मुद्दों पर चुनाव लड़ती, लेकिन उसने भी ऐसा नहीं झुठ को सच में बदलते रहेंगे? किया। इसीलिए कहते हैं- 'पर उपदेश कुशल बहु तेरे।' हेमा हरि उपाध्याय, खाचरोद, उज्जैन • अरुण कुमार त्रिपाठी, लखनऊ

प्रदूषण के विरुद्ध

ध्वनि प्रदूषण और वायु प्रदूषण का बढ़ना चिंताजनक है। यह स्वास्थ्य पर खतरे की संभावना को बढाता है। खराब सड़कों से उड़ रही धूल के कारण हवा में मिल रहे धूल कण और उद्योगों से निकलने वाले हानिकारक सृक्ष्म

कण सांस के जरिए फेफड़ों में पहुंच कर गंभीर बीमारियां पैदा करते हैं। चार दिन बाद दीपावली है और पटाखों से होने वाला प्रदूषण कई दिनों तक अपना दुष्प्रभाव दिखाता पूर्ववर्ती सरकारें दोषी किस बात के लिए हुईं? उन पर है। हम चाहें तो दीपावली जैसे त्योहार को प्रदुषण मुक्त उंगली क्यों उठाई जाती है! क्या यह अपनी विफलताओं रखने का संकल्प ले सकते हैं और इस बार पर्यावरण अनुकूल हरित पटाखे फोड़ें। ज्यादा शोर वाले पटाखों का असर छोटे बच्चों और पशु-पक्षियों पर भी होता है। इसलिए ध्विन प्रदूषण को कम करने की दिशा में भी कदम उठाने होंगे। सड़कों के किनारों के दोनों और हरे वृक्ष लगाने से तेज ध्विन की तीव्रता को कम किया जा सकता है।

संजय वर्मा, मनावर, धार

पुलिस और पहल

हाल में राजस्थान पुलिस की हिरासत से लोगों के भाग निकलने की घटनाएं हों या फिर थर्ड डिग्री के इस्तेमाल से लोगों की मौत के मामले हों, पुलिस प्रमुख ने संज्ञान तो लिया। प्रदेश में पुलिस की छवि और कार्य-संस्कृति में बदलाव लाने की दिशा में पुलिस प्रमुख की यह बड़ा कदम है। पुलिस प्रमुख ने अपने निर्देश में अधिकारियों को स्पष्ट निर्देश दिया है कि थर्ड डिग्री के इस्तेमाल के बजाय वैज्ञानिक तरीके पूछताछ और जांच के काम होने चाहिए। महिला अपराधियों के मामले में कहा गया है कि अपवाद की स्थिति में ही किसी महिला मुलजिम को रात में थाने में रखा जाए और महिला अपराधी से पृछताछ के लिए महिला पुलिसकर्मी का होना भी जरूरी है। पुलिस प्रमुख की इस सक्रियता से तो स्पष्ट है कि राजस्थान पुलिस ने मानवाधिकारों को तवज्जो देने का मन बना लिया है और अगर ऐसा वास्तव में है तो यह स्वागतयोग्य कदम है. साथ ही दूसरे राज्यों के पुलिस विभाग को भी अपने राज्यो में ऐसे दिशनिर्देशों जारी करना चाहिए। इससे इतना स्पष्ट है कि पुराने जमाने के पुलिस अधिनियम में संशोधन की जरूरत है।

• केशव प्रताप सिंह, बांदा

हिन्दुस्तान

अभूतपूर्व जीत

पहला टेस्ट मैच पूरे पांच दिन चला था, दूसरा चार दिन में खत्म हो गया और तीसरा तो कायदे से तीन दिन भी नहीं चला। बेशक रांची में हुए टेस्ट मैच में दक्षिण अफ्रीका के बचे दो खिलाड़ियों को आउट करने के लिए भारतीय टीम को चौथे दिन भी कुछ देर के लिए मैदान में उतरना पड़ा, पर पहले दिन खराब रोशनी के कारण जो मैच काफी देर नहीं हो सका, उसे अगर इससे घटा दिया जाए, तो तीसरा टेस्ट मैच भारत ने तीन दिन से भी कम समय में जीत लिया। कभी दुनिया की सबसे सशक्त टीमों में गिनी जाने वाली दक्षिण अफ्रीका की टीम को तीनों मैच में करारी मात देकर भारत ने जो रिकॉर्ड कायम किया है, वह न सिर्फ किताबों में दर्ज हुआ है, बल्कि लंबे समय तक याद भी किया जाएगा। दक्षिण अफ्रीका के कप्तान डुप्लेसिस के शब्दों में, यह ऐसी हार है, जिससे पहुंचे मानसिक आघात से उबरने में काफी वक्त लगेगा। वैसे तो यह शुरू से ही माना जा रहा था कि दक्षिण अफ्रीका की टीम भारतीय टीम के मुकाबले काफी कमजोर है, लेकिन वह तीनों टेस्ट मैच हार जाएगी और उनमें से भी दो में उसे फॉलोऑन मिलेगा, यह किसी ने नहीं सोचा था। ऐसे में, यह तर्क

टीम इंडिया ने न सिर्फ

दक्षिण अफ्रीका को

तीनों टेस्ट मैचों में

करारी शिकस्त दी,

बल्कि विश्व टेस्ट

भी बढत ले ली है।

चैंपियनशिप की होड में

बेमतलब है कि दक्षिण अफ्रीका के कई अच्छे खिलाड़ी इस बार या तो टीम में नहीं थे या फॉर्म में नहीं थे। इस हिसाब से देखें, तो भारत के सबसे अच्छे गेंदबाज बुमराह चोटिल होने के कारण नहीं खेल सके। ऐसा तो हर शंखला में

लगभग हर टीम के साथ होता है। किसी भी टीम के लिए अच्छी शृंखला वह होती है, जो सिर्फ उसे जिताती ही नहीं है, बल्कि उसे नया आत्मविश्वास और कुछ नए

खिलाड़ी देती है। टीम इंडिया को इस श्रृंखला से ये तीनों चीजें ही मिलीं, जीत भी, आत्मविश्वास भी और नए खिलाड़ी भी। पूरी शृंखला में मयंक अग्रवाल और आखिरी मैच में शाहबाज नदीम ने बड़ी उम्मीद बंधाई है। रोहित शर्मा ने खुद को टेस्ट मैच की जरूरतों के लिहाज से जिस तरह ढाला है, उसका जिक्र भी जरूरी है। कुल मिलाकर, यह ऐसी टीम है, जिसने बहुत बड़ा स्कोर भी खड़ा किया और विरोधी टीम को दोनों पारियों में आउट भी किया। यह ऐसा संतुलन है, जो दुनिया की किसी भी टीम पर भारी पड़ सकता है। भारत ने घरेलू मैदान पर लगातार 11वीं शृंखला जीती है और इसके साथ ही कप्तान विराट कोहली को यह आत्मविश्वास दिया है कि उनके खिलाड़ी अब दुनिया के किसी भी मैदान पर किसी टीम को हरा सकते हैं।

इस भारी-भरकम जीत का एक अर्थ और है कि भारत ने विश्व टेस्ट चैंपियनशिप की तालिका में सबको काफी पीछे छोड़ दिया है। इसके लिए अभी तक की जो होड़ है, उसमें भारत 240 अंकों के साथ सबसे ऊपर है। दूसरे नंबर पर श्रीलंका और न्यूजीलैंड, दोनों हैं। दोनों के ही महज 60 अंक हैं, जो बताता है कि टीम इंडिया की लीड कितनी बड़ी है। लेकिन यह ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि मौजूदा टेस्ट चैंपियनशिप अभी दो साल तक लगातार चलेगी। यानी 2021 तक भारत को अपनी यह बढ़त लगातार बनाकर रखनी होगी। इतने लंबे समय तक अपनी टीम को लगातार फॉर्म में रखना बहुत बड़ी चुनौती है। बाकी टीमों का फॉर्म भी इस दौरान बदल सकता है। लेकिन मौजूदा जीत से जो आत्मविश्वास मिला है, वह ऐसी चुनौतियों का सामना करने में सबसे बड़ा सहायक साबित हो सकता है।

विदेशी अखबार से

विज्ञान और तकनीक की ओर

एक विकासशील मुल्क होने के नाते बांग्लादेश को दुनिया के तमाम मुल्कों के साथ कदम मिलाने के लिए अब भी काफी मेहनत करनी होगी। भले ही हमारा प्रदर्शन खासतौर से पिछले एक दशक में बेहतर रहा है और हमने कुछ क्षेत्रों में अच्छी-खासी तरक्की हासिल की है, मगर अब भी कई ऐसी चुनौतियां रास्तों में हैं, जो मंजिल की तरफ बढ़ते हमारे कदमों को थाम रही हैं। भुखमरी, गरीबी और जलवायु परिवर्तन ऐसी ही दुश्वारियां हैं, जिनसे हमें संजीदगी से निपटना होगा। इन पर सीधी चोट करना और विज्ञान व अनुसंधान में निवेश बढ़ाना इन मुश्किलात से पार पाने का बेहतर तरीका है।

अच्छी बात है कि हमारी हुकूमत ने 'डिजिटल बांग्लादेश' का वादा किया है और मुल्क में विज्ञान व प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाने के लिए जमीनी स्तर पर कई काम भी किए गए हैं, मगर कुछ बुनियादी

DhakaTribune

मसलों से निपटने में इन संसाधनों का इस्तेमाल होते हमने अब तक नहीं देखा है।

जलवायु परिवर्तन भी इन्हीं मुद्दों में से एक है। यह हमारे लिए वाकई नाइंसाफी से कम नहीं है कि एक विकासशील मुल्क होने के नाते हमें दूसरे मुल्कों (हमसे कहीं अधिक विकसित) के अनियंत्रित औद्योगिकीकरण की कीमत चुकानी होगी। इसके लिए हमें उन मुल्कों से आर्थिक मदद तो मिलनी ही चाहिए, लेकिन हमें अपनी राह खुद बनाने का महत्व भी समझना होगा। टिकाऊ विकास लक्ष्य जैसे अंतरराष्ट्रीय प्रयासों में सबकी भागीदारी सुनिश्चित किए जाने की सख्त जरूरत है, जबकि इस दिशा में हम धीमी तरक्की कर रहे हैं। इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए बाकी तमाम जरूरतों से ज्यादा जरूरी है कि हम अनुसंधान और इनोवेशन को बढ़ावा दें। हो सकता है कि इस कारण बांग्लादेश विकासशील मुल्क ही बना रह जाए, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि आने वाले वर्षों में हम अपनी राह खुद नहीं बनाएं। इतिहास ने बार-बार यही साबित किया है कि विकास के पहिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी हैं। इस दिशा में हमने कम वक्त में अच्छा-खासा मुकाम हासिल किया है, लेकिन हमारे लिए यह मंजिल अब भी दूर है।

ढाका ट्रिब्यून, बांग्लादेश

७९ साल पहले



सुशासन का अभाव

मद्रास, १२ अक्तूबर। ''कांग्रेस द्वारा पेश की गई शर्तें ठुकरा दी जाने के कारण महात्मा गांधी को सरकार के खिलाफ अहिंसात्मक युद्ध की योजना बनाने के लिए बाध्य होना पड़ा है''- वर्धा जाने से पहले, परसों, 'हिन्दू' की मुलाकात में श्री राजगोपालाचार्य ने यह बात कही है। ''मि. वेण्डल विल्की ने'' राजाजी कहते हैं, ''अपनी आकाशवाणी में ब्रिटेन के प्रति हमदर्दी जाहिर करते हुए यह भी कहा है कि 'अमेरिका को हर तरह का खतरा उठाकर भी इस युद्ध से अलग रहना चाहिए' क्योंकि वह अपनी रक्षा के लिए पूरी तरह तैयार नहीं है।'' भारत की तैयारी के बारे में मेजर जनरल मोल्सवर्थ के रेडियो पर बोलने की घोषणा की गई ै है; लेकिन उसमें एक बात का वह उल्लेख नहीं करेंगे, जो जिन बातों का वह उल्लेख करेंगे उनकी बनिस्बत ज्यादा महत्वपूर्ण है। ''आधुनिक युद्ध के खिलाफ तैयार होने के लिए देश में ऐसे सुशासन की जरूरत है जिसका आधार जनता की या कम-से-कम देश की जनता के बहुमत की स्वीकृति पर हो। लेकिन भारत में इससे उलटी बात है। कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब इस बात को न दुहराया जाता हो कि यह भयानक युद्ध लोकतंत्र की खातिर और खास तौर पर मनुष्य की स्वतन्त्रता एवं प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए लड़ा जा रहा है।...''

नोबेल, गरीबी और आंबेडकर

आंबेडकर से बनर्जी तक अर्थशास्त्र की विकासवादी धारा गरीबी को ईश्वरीय प्रकोप नहीं मानती, यह मनुष्यों की व्यवस्था है, जो खत्म की जा सकती है।

भारतीय मूल के अभिजीत बनर्जी, फ्रांस मूल की उनकी शोध छात्रा रही पत्नी एस्टर डफ्लो और अमेरिकी अर्थशास्त्री माइकल क्रेमर, तीनों को संयुक्त रूप से नोबेल सम्मान मिलने के बाद से खासकर भारत की गरीबी को लेकर बहस छिड गई है। वह इसलिए भी कि जिस देश का एक पांव तरक्की के चांद पर पहुंचने को आतुर हो, उसका दूसरा पांव गरीबी की दलदल में गहरे फंसा हो, तो उसके लिए गरीबी विषयक शोध पर दिया जाने वाला नोबेल पुरस्कार विशेष मायने रखता है।

हालांकि गरीबी पर काम करने के लिए ही सन् 1974 में स्वीडिश अर्थशास्त्री गुन्नार मिर्डल को आर्थिक



चित्रांकन : डी. श्रीनिवास

विचलन के सिद्धांत के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाने के वास्ते यह पुरस्कार दिया गया था, लेकिन उसके फोकस में भारत की गरीबी नहीं थी। जबिक कुपोषण की समस्या पर नोबेल पुरस्कार पाने वाले भारतीय अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के काम में भारत की गरीबी हटाने की चिंता शामिल थी। अमर्त्य सेन ने कहा था कि देश के पहले अर्थशास्त्री बाबा साहब आंबेडकर ने यदि गरीबी हटाने को लेकर आधारभूत काम नहीं किया होता और राष्ट्रीय विकास सापेक्ष दृष्टि नहीं दी होती, तो मेरे शोध के केंद्र में गरीबी-कुपोषण की समस्या नहीं होती। विषय की प्रासंगिकता और गंभीरता का अंदाजा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि हाल में आए ग्लोबल हंगर इंडेक्स के अनुसार, भारत में 19 करोड़ बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। हंगर इंडेक्स बता रहा है कि भूख-कुपोषण में भारत की स्थिति नेपाल. बांग्लादेश और पाकिस्तान से भी खराब है!

हमारी आर्थिक नीतियों का पहिया आरंभ से ही पटरी से उतरा हुआ रहा है। हम मरीज से डॉक्टर का और डॉक्टर से मरीज का काम लेते रहे हैं, यानी अपने औजारों को मिसफिट करते रहे हैं। मसलन, देश के पहले कानून मंत्री भीमराव आंबेडकर की सबसे बड़ी डिग्री अर्थशास्त्र में ही थी। उन्हें योजना आयोग क्यों नहीं दिया गया ? आजादी मिलने के साथ ही गरीबी का अंत करना प्राथमिकता में क्यों नहीं आया, जबकि गरीबी से मुक्ति पाना भी गुलामी से मुक्ति पाने जितना ही महत्वपूर्ण था ? जिन्हें गरीबी से निजात नहीं मिली, उनके लिए गुलामी से भी निजात संभव नहीं है। हमारे राष्ट्र निर्माता देश की गरीबी के प्रति बेखबर नहीं थे। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि गांधी, आंबेडकर और नेहरू को गरीबी की विद्रुपता दिखाई नहीं दे रही थी। देश में आर्थिक नियोजन करने की क्षमता और समझ-बूझ रखने वाले अर्थशास्त्री मौजूद थे। वे आजादी के वक्त से ही जान रहे थे कि अगर देश में गरीबी अपनी जड़ें जमाए



बैठी रही, तो एक खुशहाल देश बनाने का सपना कभी पूरा नहीं होगा और इस तरह आजादी अपना वास्तविक अर्थ खो देगी। आजादी के बाद पहले प्रधानमंत्री बने जवाहरलाल नेहरू के मंत्रिमंडल के पास यह मौका था कि वह गरीबी हटाने के काम को प्राथमिकता दे, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। आंबेडकर ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया था। त्यागपत्र की एक वजह तो हिंदू कोड बिल को पूरी तरह लागू नहीं करना था। मगर इस्तीफे के पांच कारणों में एक उनके हाथों में योजना आयोग न सौंपना भी था। आखिर बाबा साहब आंबेडकर योजना आयोग क्यों लेना चाह रहे थे ? वह योजनाबद्ध ढंग से गरीबी हटाने का कार्यक्रम बनाना चाहते थे।

हम भारतीयों का नोबेल पुरस्कार से रिश्ता सिर्फ इसलिए नहीं जुड़ता कि अभिजीत बनर्जी भारतीय मूल के अर्थशास्त्री हैं, बल्कि इसलिए भी कि यह पुरस्कार वैश्विक गरीबी के संदर्भ में भारत को गरीबी मुक्त बनाने की फिक्र को लेकर किए गए काम का सम्मान है। अभिजीत बनर्जी सरकारों के गरीबी हटाने संबंधी कामों से आश्वस्त नहीं, उन्होंने सरकार की इस बात के लिए आलोचना की है कि वह गरीबी हटाने में नाकाम रही है। कांग्रेस सरकार ने तो घोषित रूप से गरीबी हटाने का बीड़ा उठाया था। गरीबी हटी होती, तो आज नोबेल विजेताओं के निष्कर्ष कुछ और होते।

भारत में बढ़ती गरीबी और विषमता ने अपराधीकरण में अभूतपूर्व वृद्धि की है। राष्ट्रीय अपराध सूचकांक की

रिपोर्ट में जारी आंकड़ों के अनुसार, 2007-से 2017 के बीच 66 फीसदी अपराध बढ़े हैं। इसकी जड़ें केवल अर्थशास्त्र में नहीं हैं। गरीबी का संबंध सामाजिक संरचना से भी है, जिसे आंबेडकर अपने अनुभव और ज्ञान, दोनों स्तरों पर समझते थे। आंबेडकर के लिए अस्पृश्यता गरीबी केवल अध्ययन का विषय नहीं थे। वह उनके बीच से आए थे। भुक्तभोगी थे। सांविधानिक प्रावधानों से गरीबी हटाने के जो उपाय उन्होंने किए थे, वे इसलिए कम प्रभावी हुए, क्योंकि संविधान लागू करने वालों की नीति में गरीबी हटाना अहम काम नहीं रहा। भारतीय सामाज सदियों से शास्त्रगत धार्मिक ढांचे में रहा है। संविधान पूर्व का कायदा धार्मिक स्वरूप का है, जिसके अनुसार शूढ़ को सबकी सेवा करनी है. व्यापार करने. शिक्षा ग्रहण करने का उसे कोई अधिकार नहीं है। हमारा सामाजिक व्यवहा कानून से कम, परंपराओं और रीति-रिवाजों से अधिक संचालित हुआ है। जाति भेद और अस्पृश्यता की भावन जो शास्त्र संगत थी, उसने संविधान संगत समाज बनाने में बाधा उत्पन्न की है। योजना आयोग के अलावा कानून के सहारे गरीबी हटाना आंबेडकर का दूसरा विकल्प था पिछले तीन दशकों में आर्थिक सुधार के नाम पर जे विकास हुआ है, उसमें असंतुलन अधिक है, जिससे गरीबी कम नहीं हो पा रही है।

भारत नोबेल पुरस्कार के हवाले से गरीबी पर ऐसे समय में बहस कर रहा है, जब 'सवर्णों' को गरीबी के आधार पर आरक्षण दिया जा रहा है। दिलचस्प यह है कि जोर गरीबी पर कम, 'सवर्ण' पर अधिक है। अगर व्यक्ति सवर्ण नहीं और उसके पास आठ लाख रुपये की वार्षिक आय, दो सौ मीटर का प्लॉट आदि की तुलना में आधा भी हो और वह गरीब होने के साथ-साथ सवर्ण न हो, तो उसे गरीब की श्रेणी का आरक्षण नहीं मिलेगा। आंबेडक से लेकर बनर्जी तक अर्थशास्त्र की विकासवादी धारा ने गरीबी को ईश्वरीय प्रकोप नहीं माना है। यह मनुष्यों की व्यवस्था है। इसलिए मानवीय प्रयासों द्वारा पोलियो औ टीवी की बीमारी की तरह गरीबी भी खत्म की जा सकर्त है। आंबेडकर मानते थे कि सरकारी योजनाओं और कार्यक्रमों द्वारा गरीबी का अंत संभव है। गुन्नार मिर्डल अमर्त्य सेन और अभिजीत बनर्जी तक सभी अर्थशास्त्री राजकीय प्रयासों से गरीबी हटाना संभव मानते हैं।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

नश्तर

दिवाली की सेल और गधे का खेल

इंसान और गधे में कई फर्क हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो बाजार के त्योहारी सीजन में तय होते हैं।

दिवाली सामने है। चुनौती सघन है। एक ही दिवाली पर कितने आइटम बेच लिए जाएं। खरीदो-खरीदो, जैकेट लो, कार लो, बाइक लो। दिवाली के मौके पर एक बाइक के साथ दूसरी बाइक फ्री।

पर मैं तो बिना बाइक के ही खुश हूं। और उस जैकेट के न होने से मेरी खुशी में कोई फर्क नहीं है। वह कितना सुंदर सूर्यास्त है। सूर्य डूब रहा है, कितना शानदार दृश्य है।

तुम सूर्यास्त को देखकर मुफ्त में खुश हो रहे हो। मुफ्त में खुश तो देखो वह गधा भी हो रहा है, यद्यपि वह सूर्यास्त को नहीं, सिर्फ हरी घास को देखकर खुश हो रहा है। जो मुफ्त में खुश होता है, वह गधा होता है। समझदार इंसान तो कुछ खरीदकर ही खुश होता है। समझदार इंसान तो एक के साथ एक फ्री की स्कीम से खुश होता है।

एक ही से काम चल जाए, तो दूसरे की जरूरत? दो शर्ट के साथ दो मुफ्त की जरूरत क्या है, बंदा दो ही शर्ट तो

साइबर संसार

जो बेहद खूबसूरत नजर

भारत के सिख दूरबीन से

आता है। अभी तक

नदी के उस पार दर्शन

करते थे। करतारपुर

बार साल 1998 में

भारत ने पाकिस्तान से

बातचीत की थी और

उसके 20 साल बाद यह

साहिब के बारे में पहली

सियासत जो न कराए

आजादी के बाद यह पहली बार होगा कि पाकिस्तान और

पाएंगे और इसका माध्यम बने हैं- एक परमपिता परमात्मा

की सीख के जरिए दुनिया को प्रेम, अपनत्व और शांति

का संदेश देने वाले बाबा गुरुनानक देव। पाकिस्तान में

गुरुनानक देव जी ने अपने जीवन के आखिरी वर्ष गुजारे

थे। जिस जगह गुरुनानक देव की मृत्यु हुई, वहां पर

गुरुद्वारा बनाया गया था। यह सफेद पत्थरों से निर्मित है,

मुद्दा फिर गरम है। जब बतौर प्रधानमंत्री इमरान खान के

शपथ ग्रहण समारोह में सरदार नवजोत सिंह सिद्धू गए, तो

उन्होंने केवल करतारपुर के लिए रास्ता देने की मांग रखी

समय सिद्ध को लोगों ने खुब भला-बुरा कहा। उसके बाद

दोनों देशों के बीच खूब तनाव हुआ, गोला-बारूद चले,

लेकिन करतारपुर साहिब कोरिडोर का काम चलता रहा।

आज कोरिडोर तैयार है, और उद्घाटिन व पहले दर्शन की

सूची बन रही है, तो सिद्धू का नाम कहीं नहीं है। क्यों?

और इमरान ने अपने दोस्त को वायदा कर दिया। उस

करतारपुर साहिब

कोरिडोर तैयार है, पर

पहले दर्शनार्थियों में

नवजोत सिंह सिद्ध की

चर्चा कहीं नहीं है।

पंकज चतुर्वेदी की फेसबुक वॉल से

करतारपुर वह स्थान है, जहां सिखों के पहले गुरु

भारत के बीच बगैर वीजा के नागरिक सरहद पार कर

क्या, एक ही शर्ट में भी ख़ुश रह सकता है।

कोई बिना शर्ट के भी खुश रह सकता है, अगर वह गधा हो। सिर्फ इंसान में यह काबिलियत है कि वह दो शर्ट के साथ दो शर्ट मुफ्त पाकर खुश हो सके। अच्छा, एक लाख वाला मोबाइल ले लो।

मेरा काम तो पांच हजार वाले मोबाइल में बखूबी चल रहा है। काहे को खरीदो ज्यादा फीचर वाला मोबाइल फोकटी की किच-किच, किसी का फेसबुक देखो, किसी के वाट्सएप, गुड मॉर्निंग संदेश पर गुड मॉर्निंग बोलो। मॉर्निंग में वाट्सएप पर इतने गुड मॉर्निंग मैसेज आते हैं कि बंदा सबका जवाब दे, तो सचमुच की मॉर्निंग की हवा में गुड फील ही न कर पाए।

खरीदो-खरीदो, बिना मोबाइल के तो गधा भी खुश रहता है। जो भी तमाम तरह की मार्केटिंग स्कीमों के बगैर ही खुश है, तो वह बंदा एकदम गधा है, टॉप क्लास वाला।

मुफ्त में खुशी हासिल करना गधे का काम है, परम गधा होने के लिए बहुत मेहनत से कमाना पड़ता है और बहुत ही मूर्खता से खर्च करना पड़ता है।

आलोक पुराणिक

मनसा वाचा कर्मणा

भूखों को भोजन

वह नजीर अकबराबादी की नज्म पढ़ रहे थे- जब आदमी के पेट में जाती हैं रोटियां, फूली नहीं बदन में समाती है रोटियां। पढ़ते-पढ़ते वह खो से गए और तय कर लिया कि रोटियों की कद्र करेंगे और रोटी के हकदार लोगों की भी। नतीजतन अपने घर में हाल में होने वाले शादी-समारोह के खाने के मेन्यू में कमी की और बाकी बची राशि से वंचित लोगों के लिए एक भोज का आयोजन तय किया। ऐसा हम भी कर सकते हैं।

कोई भूखा न रहे, यह हमारी बुनियादी सोच होनी चाहिए। भूखा पेट हमारी दुनिया का सबसे बड़ा संकट भी है और हमारी सबसे शर्मनाक स्थिति भी। यह बताता है कि हमने संसाधनों का असमान बंटवारा कर रखा है। गांधीजी उपवास का जो गुणगाण करते थे, उसके पीछे एक सोच यह भी थी कि आपके एक दिन का भोजन किसी न किसी रूप में दसरे के काम आए। आज फिर से भूख की अहमियत समझी जा रही है, इसलिए रोटी बैंक की स्थापना से लेकर भंडारे जैसे आयोजनों पर जोर दिया जा रहा है, लेकिन इतना ही काफी नहीं।

सोफी मेडलिन, जो ब्रिटेन के किंग्स कॉलेज में आहार और मनोविज्ञान विषय की विशेषज्ञ हैं, कहती हैं कि कोई भुखा न रहे, यह सोच जिन देशों में पुरातन काल से रही, वहीं पर गरीब और भुखे लोगों की तादाद ज्यादा है। वह कहती हैं कि वहां अन्न देवता हैं, इस सोच के कारण अन्न की बर्बादी तो कम हुई, पर वह अन्न पड़ोसियों तक नहीं पहुंचा। मेडलिन मानती हैं कि अब दुनिया में यह सोच स्थाई करनी होगी कि अधिक खाया, तो समझिए कि आप दूसरों का हिस्सा खा रहे हैं। इससे पूरी मानव जाति का स्वास्थ्य बेहतर होगा।

नीरज कुमार तिवारी

नजरिया

टेस्ट क्रिकेट में रोहित शर्मा का नया अवतार

अब रोहित सिर्फ सीमित ओवरों के चैंपियन नहीं रहे। टेस्ट क्रिकेट में भी वह टीम के बड़े बल्लेबाजों में शुमार हो गए हैं।

शिवेंद्र कुमार सिंह वरिष्ट खेल पत्रकार



टेस्ट क्रिकेट में रोहित शर्मा ने करीब छह साल पूरे कर लिए हैं। टेस्ट करियर में रोहित के खाते में 30 टेस्ट मैच और छह शतक हैं। दिलचस्प बात यह है कि पिछले छह साल में पांच साल, 11 महीने ने और 27 टेस्ट मैचों में उन्होंने तीन शतक बनाए थे और पिछले एक महीने से भी कम समय में वह तीन टेस्ट मैचों में तीन शतक लगा चुके हैं। इनमें एक दोहरा शतक भी शामिल है। साथ ही इनमें विशाखापट्टनम टेस्ट मैच की दोनों पारियों के शतक शामिल हैं। यही वजह है कि दक्षिण अफ्रीका के खिलाफ मौजूदा शृंखला में उनके प्रदर्शन को उनके नए अवतार की तरह देखा जा रहा है। यह नया अवतार इसलिए भी है, क्योंकि टेस्टक्रिकेट

में इसी सीरीज में उन्हें सलामी बल्लेबाज की भिमका दी गई। इस भूमिका को निभाते हुए उन्होंने तीन में से दो मैचों में 'मैन ऑफ द मैच' का खिताब हासिल किया, बल्कि उन्हें ही 'मैन ऑफ द सीरीज' भी चुना गया। इस शृंखला में उन्होंने कुल 529 रन बनाए। साल 2005 के बाद यह पहला मौका है, जब किसी भारतीय बल्लेबाज ने एक ही सीरीज में 500 से ज्यादा रन बनाए हों। 2005 में वीरेंदर सहवाग ने यह कारनामा पाकिस्तान के खिलाफ किया था। एक सीरीज में 500 से ज्यादा रन बनाने वाले रोहित पांचवें भारतीय बल्लेबाज भी बन गए। वीरेंदर सहवाग के अलावा यह कारनामा सुनील गावस्कर, विराट कोहली और सौरव गांगुली कर चुके हैं। रोहित ने एक सीरीज में सबसे ज्यादा छक्के लगाने का वेस्ट इंडीज के शिमरन हेटमेयर का रिकॉर्ड भी तोड़ दिया। उन्होंने इस सीरीज में 19 छक्के लगाए। हरभजन के नाम 14 छक्कों का रिकॉर्ड है। यानी विराट कोहली की तर्ज पर ही रोहित शर्मा ने इस टेस्ट सीरीज में रिकॉर्ड पर रिकॉर्ड कायम किए हैं।

जाहिर है, इन टेस्ट पारियों का रोहित शर्मा के करियर में बड़ा महत्व है। उन्होंने तीन शतक ऐसे वक्त में लगाए, जब यह आशंका गहराती जा रही थी कि रोहित भी टेस्ट क्रिकेट के मामले में युवराज सिंह के रास्ते पर बढ़ रहे हैं। दरअसल. यवराज सिंह सीमित ओवरों में भारतीय क्रिकेट इतिहास के सबसे कामयाब खिलाड़ियों में से एक हैं, लेकिन लाख कोशिशों के बाद भी वह खुद को टेस्ट क्रिकेट में साबित नहीं कर पाए। रोहित शर्मा के साथ भी कुछ ऐसा ही हो रहा था। जिन आंकड़ों का जिक्र हमने पहले ही किया कि 27 टेस्ट मैच खेलने के बाद उनके

खाते में सिर्फ तीन शतक थे। इस बात का डर तब और बढ़ गया, जब वेस्ट इंडीज के खिलाफ टेस्ट सीरीज के लिए उन्हें टीम में तो रखा गया, लेकिन प्लेइंग-11 में जगह नहीं मिली। असल में, केएल राहुल पर कप्तान विराट कोहली का भरोसा कम ही नहीं हो रहा था। लेकिन जब कोहली का यह भरोसा डगमगाया, तो फिर रोहित शम की कामयाबी का रास्ता निकला। हांलाकि उनके लिए यह चुनौती आसान नहीं थी। खुद रोहित ने तीसरे टेस्ट मैच के बाद यह बात कही भी, लेकिन जिस शानदार अंदाज में उन्होंने इस चुनौती का सामना किया है, वह यकीनन उनके करियर के लिए एक मील का पत्थर साबित होगी। खास तौर पर तीसरे टेस्ट मैच में रोहित ने मश्किल परिस्थितियों में शतक लगाया। उन्होंने भारत की पारी को उस वक्त संभाला, जब महज 39 रनों पर तीन विकेटगिर चुके थे।

इन शतकों की नींव को भी पहचानना होगा। जो रोहित

विराट कोहली की तर्ज पर ही रोहित शर्मा ने इस टेस्ट सीरीज में रिकॉर्ड पर रिकॉर्ड कायम किए हैं।

शर्मा ने 2019 विश्व कप के दौरान ही डाली थी। इंग्लैंड में जिस तरह से उन्होंने तेज गेंदबाजों की गेंदों को ऑफ स्टंप के बाहर छोड़ना शुरू कर दिया था, उसे देखकर ही लगा था कि अब वह टेस्ट क्रिकेट के लिए नई तैयारी के साथ उतरेंगे। विश्व कप में उन्होंने पांच शतक लगाए थे दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान, इंग्लैंड, श्रीलंका और बांग्लादेश के खिलाफ। और इन सारे शतकों में उनकी पारी का 'पैटर्न' लगभग एक सा था। रोहित ने पहले गेंदबाजों को इज्जत दी और फिर प्रशंसकों से इज्जत कमाई। ठीक उसी संयम के साथ, जब टेस्ट क्रिकेट मे उन्होंने बल्लेबाजी की शुरुआत की, तो उन्हें कामयाबी मिली। मुंबई के ही एक और दिग्गज सलामी बल्लेबाज सुनील गावस्कर हमेशा कहा करते हैं कि टेस्ट क्रिकेट मे कामयाबी का एक तय फॉर्मूला है, शुरुआती 30-40 मिनट विरोधी टीम के गेंदबाजों को सम्मान दिया जाए। रोहित शर्मा ने इस सबक को साध लिया है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

हैं, ताकि उसके बहाने प्रतिवर्ष

मेल बॉक्स

विकास का भ्रम

भारतीय अर्थव्यवस्था की उच्च विकास दर जनित उपलब्धियां उस समय अपनी चमक खो बैठती हैं, जब भारत का आकलन सामाजिक और मानव विकास के मोर्चे पर किया जाता है। 2017-18 में छह प्रतिशत बेरोजगारी दर, एक चौथाई से अधिक जनसंख्या का अब भी गरीबी रेखा के नीचे रहना, बड़ी आबादी को पीने के लिए साफ पानी न मिल पाना, प्रति वर्ष एक हजार नवजातों में से 32 का अपना पहला जन्मदिन न देख पाना, पांच वर्ष तक के आयु-वर्ग के बच्चों और उनकी माताओं में कुपोषण का ऊंचा स्तर यह बताता है कि देश की लगभग 40 करोड़ आबादी के लिए विकास दर बेमानी है। वैश्विक भूख सूचकांक में भारत का लुढ़कना,

लिंगमूलक विकास सूचकांक में बुरी हालत और मानव विकास सुचकांक में कई देशों से पीछे होना, यह स्पष्ट करता है कि भारत के करोड़ों लोग अब भी विकास की बाट जोह रहे हैं। उन लोगों तक सरकारी योजनाएं पहुंचनी चाहिए। सरकार को इस दिशा में काम करना चाहिए। नवीनचंद्र तिवारी

सेक्टर-14, रोहिणी, दिल्ली tewari.navinchandra@gmail.com

दीपावली पर अब हम बिजली की रोशनी अधिक करने लगे हैं। मगर अब भी जरूरी यही है कि हम इस दिन मिट्टी के दीये अधिक से अधिक इस्तेमाल करें। इससे साल भर छोटे-छोटे दीये बनाने वाले गरीब मेहनतकशों की मेहनत सफल हो

दीयों वाली दीपावली

सकेगी। उन्हें अपनी मेहनत का लाभ मिल सकेगा और वे भी दीपावली सुकून से मना सकेंगे। मिट्टी के दीयों की रोशनी आकर्षक तो होती ही है, साथ-साथ उसकी जगमगाहट आंखों के लिए सुकूनदेह भी होती है। अच्छी बात यह भी है कि इससे प्रदूषण बढ़ने का कोई खतरा नहीं होता, उल्टे मिट्टी का दीया टूटने के बाद मिट्टी में आसानी से मिल जाता है। इसलिए हमें हमेशा दीयों वाली दीपावली

देवेंद्र नेनावा गिरधर नगर, इंदौर, मध्य प्रदेश

जरूरी है मुहतोड़ जवाब

मातृभूमि की रक्षा में शहीद हुए वीर जवानों की शहादत का बदला लेकर भारत ने पाकिस्तान को स्पष्ट संदेश दे दिया है कि अब वह उसका कोई

बेजा शोर

अपने यहां हर साल हरियाणा और पंजाब के किसानों द्वारा पराली जलाने से हुए प्रदूषण का हौआ खड़ा किया जाता है। हफ्ते-दस दिनों तक इस मसले पर गरमागरम बहसें होती हैं, और फिर सब कुछ शांत हो जाता है। देखा जाए, तो यही हमारी फितरत भी है, इसलिए यहां समस्याओं का स्थाई समाधान नहीं निकलता। इस तरह की समस्याओं का सामना दूसरे देश भी करते हैं, पर वहां वैज्ञानिक तरीकों से समाधान की पहल की जाती है। मगर अपने यहां तो समस्याएं इसलिए जीवित रखी जाती

कमीशन का खेल चलता रहे। मामलों पर शोर मचाया जाता है, उसका हल नहीं निकाला जाता। जबकि किसानों पर दोष देने से पहले यह सच्चाई जान लेनी चाहिए कि दिल्ली सहित पूरे देश में लगभग 72 प्रतिशत वायु प्रदूषण डीजल या पेट्रोल से चलने वाली छोटी-बड़ी गाड़ियों के कारण होता है, और 20 प्रतिशत कल-कारखानों से निकलने वाले धुएं से। शेष लगभग आठ फीसदी प्रदूषण का कारण किसानों का पराली जलाना है। इस सच्चाई के आलोक में ही नीतियां बननी चाहिए **निर्मल कुमार शर्मा,** गाजियाबाद

साधारण डाक से पत्र भेजने के अलावा आप ईमेल से भी अपनी राय भेज सकते हैं। ईमेल से 'आपकी राय' भेजने के लिए हमारा पता है- mailbox@livehindustan.con

शत-शत नमन।

दुस्साहस बर्दाश्त नहीं करेगा।

और अविस्मरणीय शौर्य ने हर

नापाक इरादों और सीजफायर

चाल का मुंहतोड़ जवाब दिया

जाएगा। हर भारतवासी शहीदों के

परिवार के साथ है और हम उनके

बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने देंगे।

राष्ट्र रक्षार्थ शहीद जवानों को देश का

मोहित सोनी, कुक्षी, धार, मध्य प्रदेश

sonimohit895@gmail.com

देशवासी का दिल जीत लिया है।

अब पाकिस्तान के आतंकी हमलों,

उल्लंघन की केवल आलोचना या

भर्त्सना नहीं होगी, बल्कि उसकी हर

भारतीय सेना के अदुभृत-अद्वितीय

दैनिक जागरण



सात्विक भोजन मन को शुद्ध करता है

सोशल मीडिया पर लगाम

यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने सोशल मीडिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए विभिन्न उच्च न्यायालयों में दायर याचिकाओं को अपने पास स्थानांतरित कर लिया। अब इन सभी याचिकाओं की सुनवाई वह स्वयं करेगा। इन याचिकाओं के संदर्भ में केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट को सूचित किया है कि उसकी ओर से अगले तीन माह में सोशल मीडिया संबंधी नियम तैयार कर लिए जाएंगे। इन नियमों के बारे में अभी कुछ कहना कठिन है, लेकिन ऐसे सवाल उठ खड़े होना स्वाभाविक है कि आखिर सरकार को ऐसे कोई नियम क्यों तैयार करने चाहिए? यह अंदेशा भी प्रकट किया जा रहा है कि कहीं नियम बनाकर सरकार सोशल मीडिया की निगरानी तो नहीं करने लगेगी? ऐसे सवाल और संदेह के बीच इस सच की अनदेखी नहीं की जा सकती कि पूरी दुनिया के लिए सोशल मीडिया का दुरुपयोग एक गंभीर समस्या बना गया है। यह समस्या इसलिए और विकट हो गई है, क्योंकि सोशल मीडिया कंपनियां अपने प्लेटफॉर्म का दुरुपयोग रोकने के लिए कोई कारगर व्यवस्था नहीं कर रही हैं। जब उनसे इसकी अपेक्षा की जाती है तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बाधित करने का शोर मचने लगता है। यह शोर सुप्रीम कोर्ट तक भी पहुंच सकता है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सोशल मीडिया के नियमन की कोई जरूरत नहीं। सच तो यह है कि इसकी जरूरत कहीं अधिक बढ़ गई है। इसका कारण यही है कि सोशल मीडिया का दुरुपयोग सभ्य समाज के समक्ष गंभीर संकट पैदा कर रहा है।

सरकारों के साथ उसकी एजेंसियों के लिए सोशल मीडिया का दुरुपयोग रोकना कठिन हो रहा है। सरकारी एजेंसियों की ओर से सोशल मीडिया के बेजा इस्तेमाल को रोकने के जो थोड़े-बहुत उपाय किए गए हैं वे इसलिए बेअसर साबित हो रहे हैं, क्योंकि फर्जी एवं अधकचरी खबरों के जरिये दुष्प्रचार अभियान चलाने और सामाजिक ताने-बाने को क्षति पहुंचाने अथवा किसी को बदनाम करने वाला एक संगठित उद्योग खड़ा हो चुका है। यह एक ऐसा उद्योग है जो लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए खतरा बन रहा है। आखिर कौन भूल सकता है कैंब्रिज एनालिटिका नामक कंपनी की उस कारस्तानी को जिसने फेसबुक का डाटा चोरी कर कई देशों के चुनावों को प्रभावित करने की कोशिश की थी? ऐसे व्यापक छल-कपट को देखते हुए यह आशा करना व्यर्थ है कि सरकारें सोशल मीडिया का नियमन करने के कोई उपाय न करें। नियमन की जरूरत इसलिए और बढ़ गई है, क्योंकि सोशल मीडिया कंपनियां अपनी जिम्मेदारी समझने के लिए तैयार नहीं। इसकी गिनती करना कठिन है कि फेसबुक सरीखी नामी कंपनी ने डाटा चोरी के मामले में कितनी बार मिथ्या जानकारी देकर लोगों को भरमाने की कोशिश की है।

हिमाचल की सेहत

स्वास्थ्य को सबसे बड़ा धन कहा गया है। यदि रुपया-पैसा हाथ से निकल जाए तो उसे फिर हासिल किया जा सकता है, लेकिन एक बार स्वास्थ्य बिगड़ जाए तो उसे पुरानी स्थिति में लाना बहुत कठिन होता है। अच्छा स्वास्थ्य जीवन के समस्त सुखों का आधार है। बदलते समय के साथ लोग स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के प्रति अधिक जागरूक हुए हैं। वे लोग, जो तंदरुस्त और स्वस्थ हैं, वे जीवन में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं। लेकिन अब भी बड़ा वर्ग ऐसा है, जो स्वास्थ्य को लेकर गंभीर नहीं है। हिमाचल भी इससे अछता नहीं है। नीति आयोग के मानकों के आधार पर स्वास्थ्य सुविधाओं और स्वास्थ्य कार्यक्रमों के संचालन पर जारी की गई रैंकिंग इसे साबित भी करती है। चिंताजनक है कि हिमाचल प्रदेश का कोई भी जिला 100 में से 50 फीसद अंक भी हासिल नहीं कर सका है। बिलासपुर जिला प्रदेश में 47.78

अंकों के साथ प्रथम स्थान पर, जबकि लाहुल स्पीति 27.25 अंकों के साथ अंतिम स्थान पर है। कुल्लू एवं शिमला जिलों की स्थिति भी चिंता बढ़ाने वाली है। दोनों जिलों ने रैंकिंग में क्रमशः नौवां और दसवां स्थान पाया है। नीति आयोग द्वारा जारी की

गई सभी राज्यों की रैंकिंग में भी हिमाचल

नीति आयोग की रैंकिंग स्वास्थ्य विभाग को आईना दिखाने वाली है। सबक लेकर बेहतर नियोजन कर खामियां दूरकी जानी चाहिए

एक पायदान नीचे चला गया है। स्वास्थ्य विभाग द्वारा किए गए मूल्यांकन में जनजातीय जिले चंबा में बहुत अधिक कमियां पाई गई हैं। वहां पर स्वास्थ्य कार्यक्रमों का ऑनलाइन डाटा तैयार नहीं किया जा रहा है और चिकित्सकों की कमी के साथ अन्य सुविधाओं का भी अभाव है। लाहुल स्पीति में घरों के बहुत अधिक दूरी पर होने के कारण और उपकरणों के साथ अन्य सुविधाओं की कमी सामने आई है। स्वास्थ्य विभाग के लिए यह रैंकिंग चेतावनी है, जिससे सबक लेकर भविष्य में स्वास्थ्य सुविधाओं और स्वास्थ्य कार्यक्रमों को लेकर अधिक गंभीर होने की जरूरत है। मामला लोगों की सेहत से जुड़ा है, इसलिए इसमें लापरवाही कतई नहीं होनी चाहिए। जिन कारणों से प्रदेश के प्रदर्शन में गिरावट आई है, उन्हें दूर करने के लिए अभी से प्रयास करने की जरूरत है, ताकि अगली बार ऐसी स्थिति का सामना न करना पड़े।

तथ्यों की कसौटी पर लिखा जाए इतिहास



उन लोगों के चेहरे बेनकाब होने ही चाहिए जिन्होंने हमारे स्वर्णिम अतीत को स्याह बनाने की हरसंभव कोशिश की है

'जादी के बाद छह दशकों तक देश उन्नि जादा क बाद छह दशका तक दरा में 'लुटियन समूह' का बोलबाला रहा। इसमें नेहरूवादी-मार्क्सवादी और छद्म धर्मनिरपेक्षतावादियों का जमावड़ा रहा जो कुछ असहमितयों के बावजूद वैचारिक सहोदर हैं। उन्होंने स्कूली पाठ्यक्रम से लेकर लोक नीतियों और इतिहास लेखन तक को प्रभावित किया। अपने इस प्रभाव से वे ऐसा झूठा विमर्श खड़ा करने में सफल रहे जिसने भारतीय सभ्यता पर प्रहार करते हुए उसे लगातार कमजोर किया ताकि वह समय के साथ विस्मृत होती जाए। इससे वे स्वतंत्रता के बाद जन्मीं भारत की तीन पीढ़ियों को उनकी स्वर्णिम विरासत से दूर रखने में सफल रहे। उन्होंने भारतीयों के मन में अपने अतीत को लेकर हीनता और शर्म का भाव भी भर दिया। इस मोर्चे पर सबसे ज्यादा नुकसान वामपंथी नेताओं, नौकरशाहों और अकादिमक तबके ने किया। उन्होंने स्कूली किताबों से लेकर इतिहास के उच्च अध्ययन पाठ्यक्रमों की विषयवस्त् को विकृत किया। साथ ही ऐसे विधायी कदम उठाए और सरकारी नीतियां बनाईं जिससे आम जनमानस अपनी खुद की संस्कृति और परंपराओं से परहेज करने लगे।

सदियों से भारत की सभ्यतागत पहचान हिंदुत्व से जुड़ी थी तो इस तबके की व्यापक योजना हिंदू विरोध ही बन गई। उसने हिंदुत्व से जुड़ी चीजों के प्रति नकारात्मकता और हिंदू विरोधी बातों को प्रोत्साहन देने का काम किया। नफरत और विरोध की इस आग का दायरा कई क्षेत्रों तक फैलता गया जिसमें वेदों, रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों का उपहास उड़ाना, योग और आयुर्वेद को खारिज करना और सभी भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत की लानत-मलानत करना शामिल था। दुनिया में अन्यत्र ऐसी कोई मिसाल मिलना मुश्किल है जहां कुछ लोगों का समूह देश की बड़ी आबादी को उनकी सभ्यता एवं संस्कृति से दूर करने में सफल रहा हो। यह वर्ग 67 वर्षीं तक अपनी इस मुहिम में कामयाब रहा। इसमें 1998 से 2004 के बीच राजग सरकार के छह वर्षों का कार्यकाल भी शामिल है। सत्ता की कमान नरेंद्र मोदी के हाथों में आने के बाद ही वे अपनी नियति को प्राप्त हुए, जब 2014 में भारतीय जनता उनसे त्रस्त आ गई और उसने नेहरूवादी-मार्क्सवादी ब्रिगेड को उनके अड्डों से बेदखल करने का फैसला किया। 2019 के आम चुनाव में जनता ने अपने उसी जनादेश को दोहराया। इससे विमर्श बदलने की प्रक्रिया में निरंतरता का भाव आया और विश्व में प्राचीन भारतीय सभ्यता के अद्भुत योगदान को स्वीकारने, सराहने का सिलसिला शुरू हुआ।

भारतीय जनता ने छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी तबके को जब हाशिये पर पहुंचा दिया है तब राष्ट्रीय गौरव की पुनर्स्थापना प्रक्रिया भी अवश्य आरंभ की जानी चाहिए। गृहमंत्री अमित शाह द्वारा इतिहास के पुनर्लेखन के आह्वान को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। शाह ने तमाम



उदाहरण गिनाए, मगर उन्होंने वीर सावरकर का विशेष उल्लेख किया जिन्होंने 1857 को स्वतंत्रता के पहले संग्राम की संज्ञा दी थी जबिक इतिहासकारों ने उसे अंग्रेजों के खिलाफ महज एक बगावत माना था। शाह ने सही कहा कि हमें ऐसा इतिहास लिखना चाहिए जो तथ्यों से न्याय करे। जैसे औरंगजेब की ही मिसाल लें। वर्ष 1669 में उसने अपने सेनापितयों को हिंदू मंदिरों के विध्वंस का आदेश दिया। इनमें काशी विश्वनाथ मंदिर, सोमनाथ मंदिर और मथुरा के बेहद पवित्र मंदिर शामिल थे। उसने मथुरा में मंदिर ध्वस्त कर एक विशाल मस्जिद बनवाई और भगवान कृष्ण की मूर्ति को मस्जिद की सीढियों के नीचे दफन करा दिया ताकि मुस्लिम श्रेष्ठता कायम हो सके।

औरंगजेब हिंदू धर्म छोड़ इस्लाम अपनाने वालों को सरकारी नौकरियां देता था। सजा में छूट भी एक लुभावनी पेशकश हुआ करती थी। हिंदुओं द्वारा मंगाई जानी वस्तुओं पर उसने कर बढ़ाया और जजिया कर भी थोप दिया। उसने सिख गुरुद्वारों को भी नहीं बख्शा। गुरु तेगबहादुर को गिरफ्तार कर प्रताड़ित किया और इस्लाम अपनाने से इन्कार करने पर उनका सिर

कलम करवा दिया। गुरु गोविंद सिंह के दौर में भी सिखों पर उसके जुल्म जारी रहे और उसने उनके बेटों की हत्या करा दी। ये औरंगजेब की कुछ करतूतें हैं। फिर भी तमाम इतिहासकारों ने तथ्यों की अनदेखी कर उसे एक 'सेक्युलर' व्यक्ति बताया। अगर विकृत इतिहास लेखन के लिए कोई पुरस्कार होता तो ऐसा इतिहास लिखने पर वह शर्तिया मिल जाता। क्या छद्म धर्मनिरपेक्षतावादी दिल्ली के दिल में एक प्रमुख सड़क का नामकरण ऐसे आततायी के नाम पर करने के पीछे का तर्क बता पाएंगे?

भारत के छोटे-बड़े शहरों में तमाम सड़कों का नामकरण इस अपराधी शासक के नाम पर हुआ। यह इसलिए संभव हुआ, क्योंकि हिंदुत्व से नफरत करने वाले ही विमर्श गढ़ने की दिशा नियंत्रित कर रहे थे। इसी तर्ज पर बाबर, हुमायूं और जहांगीर जैसे बर्बर जुल्म ढाने वालों को भी राजधानी सहित देश के अन्य इलाकों में बहुत सम्मान दिया गया। ऐसे अपराधियों से जुड़े प्रतीकों को कायम खकर भारत कब तक सेक्युलर एवं लोकतांत्रिक राष्ट्र बना रह सकता है? यदि हमें संविधान की रक्षा करनी है और हम अपनी धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक

पुस्तकों में इस सच को शामिल करना होगा हमारी लोक नीतियां भी संविधान के बुनियादी मुल्यों के आधार पर बननी चाहिए। इसका अर्थ यही होगा कि ऐसी भयावह स्मतियों के अवशेषों को हमेशा के लिए दफन करना होगा सौभाग्य से दिल्ली में औरंगजेब रोड का नाम बदलकर अब उसे बेहद सम्मानित पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के नाम पर कर दिया गया है। औरंगजेब की श्रेणी में आने वाले दूसरे नामों के साथ भी यही सुलूक किया जाए। उनके साम्राज्य से जुड़े कड़वे सच और कट्टरता के किस्से पाठ्यक्रमों का हिस्सा बनने चाहिए ऐसा करके ही सुनिश्चित किया जा सकता है कि भारत का भविष्य ऐसी कट्टरता में नहीं बल्कि वास्तविक लोकतंत्र में निहित है जहाँ समता एवं समानता का सिद्धांत ही मूलमंत्र है।

भारत को अपना बसेरा बनाने वाले फ्रांसीसी पत्रकार फ्रेंकोइस गुटेर और बेल्यिजन विद्वान कोनार्ड एल्स्ट ने भारतीयों को उस धोखेबाजी को लेकर चेताया है जो वामपंथी नेता अकादिमक एवं नौकरशाह करते आए हैं। गृटेर अर्से से भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की दुहाई दे रहे हैं। एल्स्ट ने उन मार्क्सवादी इतिहासकारे को निशाना बनाया है जिन्होंने हिंदू प्रतीकों को मिटाने की मुहिम चलाई और जिन्हें वामपंथी सोच वाले कथित सेक्युलर नेताओं, पत्रकारो और बुद्धिजीवियों का साथ मिला। भारतीय राज्य ने भी इसमें सहयोग दिया। एल्स्ट का कहना है कि भारतीय अंग्रेजीदां अभिजात्य वर्ग के लिए भारतीय सभ्यता को तिलांजलि देना ही फैशन बन गया। गृहमंत्री की बातों का सार भी यही है। अब उन लोगों के चेहरे बेनकाब होने ही चाहिए जिन्होंने हमारे स्वर्णिम अतीत को स्याह बनाने की हरसंभव कोशिश की।

> (लेखक प्रसार भारती के चेयरमैन एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं response@jagran.com

कत्ल होता कानून का शासन

ससे इन्कार नहीं कि 2016 में गुमनाम से हिंदूवादी नेता कमलेश तिवारी ने पैगंबर साहब को लेकर अपने एक बेजा बयान से मुस्लिम समाज को उद्वेलित करने का काम किया था, लेकिन इसका यह मतलब नहीं था कि उनका एक तरह से एलानिया कत्ल कर दिया जाता। दुर्भाग्य से ऐसा ही किया गया और वह भी तब जब उन्हें अपने उक्त बयान के कारण करीब एक साल तक राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के तहत जेल में रहना पड़ा। कमलेश की गिरफ्तारी के बाद भी उन्हें जान से मारने की धमिकयां दी गईं और उन्हें फांसी की सजा देने की मांग को लेकर हिंसक प्रदर्शन किए गए। मालदा, पश्चिम बंगाल में हुए ऐसे ही प्रदर्शन में एक पुलिस थाने समेत कई वाहन जला दिए गए थे। इसके अलावा बिजनौर के एक मौलाना और एक मुफ्ती ने कमलेश तिवारी का सिर कलम करने वाले को डेढ़ करोड़ रुपये का इनाम देने का एलान किया था। इस पैसे के साथ सोने का एक मुकुट भी देने की पेशकश की गई थी। अगर कोई यह सोच रहा है कि इसके बाद इस मौलाना और मुफ्ती को गिरफ्तार कर लिया गया होगा तो वह गलत है। इन दोनों को गिरफ्तार तो किया गया, लेकिन बीते दिनों तब जब कमलेश तिवारी की हत्या कर दी गई। इसका सीधा-सरल मतलब यही निकला कि करीब तीन साल तक किसी ने यह नहीं समझा कि इस तरह किसी के सिर इनाम रखने से कानून के शासन की हेठी होती है और उसका मजाक भी उड़ता है। कहना कठिन है कि इस मुफ्ती और मौलाना का कमलेश तिवारी की हत्या से कोई लेना-देना है या नहीं, लेकिन सभ्य समाज के लिए इससे बुरी बात और कोई नहीं कि कोई किसी का सिर काटने की जरूरत जताए और फिर भी उसका बाल बांका न हो। यह पहली बार नहीं जब किसी ने किसी के सिर पर

इस तरह इनाम रखा हो। अपने देश में इस तरह का काम होता ही रहता है और मुश्किल से ही ऐसे लोगों पर कोई कारगर कार्रवाई होती हैं। रह-रहकर जिस-तिस का सिर, जीभ, नाक काटने की धमकी देना इतना आम हो चला है कि इस पर भरोसा करना कठिन है कि देश में कानून का राज है। ऐसी धमिकयां देने वालों के खिलाफ कभी-कभार कार्रवाई होती भी है, लेकिन आम तौर पर वह इतनी मामूली किस्म की होती है कि ऐसे लोगों की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता। उलटे वे और चर्चित हो जाते हैं। सरजपाल अम्म और अकबरुद्दीन ओवैसी इसके सटीक उदाहरण हैं। कमलेश तिवारी की हत्या के बाद खुद को शिवसेना नेता बताने वाले अरुण पाठक ने उनके हत्यारों



किसी के सिर इनाम रखे और फिर भी

सभ्य समाज के लिए

इससे बुरी बात और

कोई नहीं कि कोई



है। 2006 में बसपा नेता हाजी याकूब कुरैशी ने पैगंबर साहब के कार्टून बनाने वाले डेनमार्क के कार्टूनिस्ट के सिर पर 51 करोड़ रुपये का इनाम ख्वा था। इसके बाद इन्हीं हाजी जी ने फ्रांसीसी पत्रिका शार्ली आब्दो के दफ्तर में हुए आतंकी हमले को जायज ठहराया। हाजी याकूब को कोई चाहे जिस नजर से देखे. यह जानना ज्यादा जरूरी है कि बीते लोकसभा चुनाव में हापुड़-मेरठ निर्वाचन क्षेत्र में वह दूसरे नंबर पर रहे थे और उन्हें पांच लाख से अधिक

कमलेश तिवारी की हत्या को चाहे जैसी घटना के तौर पर व्याख्यायित किया जाए, लेकिन हिंदू समाज पार्टी के दफ्तर में उनके कत्ल और शार्ली आब्दो दफ्तर में हुए आतंकी हमले में ज्यादा अंतर नहीं। उस हमले के जरिये भी यही रेखांकित किया गया था कि पैगंबर साहब की शान में गुस्ताखी करने वाले जिंदा नहीं बचेंगे और कमलेश तिवारी की हत्या से भी यही जाहिर किया गया, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से इन दिनों वह तबका खामोश है जो लिबरल-सेक्युलर के तौर पर जाना जाता है। इस तबके को इस पर उचित ही आपत्ति है कि कमलेश तिवारी की हत्या के बाद पैगंबर साहब के खिलाफ सोशल मीडिया में अभद्र टिप्पणियां की गईं। ये टिप्पणियां वाकई शर्मनाक और माहौल दूषित करने वाली थीं और उनके खिलाफ आवाज उठनी ही चाहिए, लेकिन आवाज उनके खिलाफ भी तो उठनी चाहिए जो कमलेश तिवारी की हत्या का जश्न मनाने या फिर हत्या को जायज ठहराने में लगे हुए थे। यह देखना दयनीय रहा कि जश्न मनाने वालों ने पैगंबर साहब के खिलाफ अभद्र टिप्पणियों के जवाब में जब शांति का उपदेश देना शुरू किया तो कहीं दुबका पड़ा सेक्युलर-लिबरल तबका तत्काल उनके साथ आ खड़ा हुआ।

कमलेश तिवारी पहले ऐसे शख्स नहीं जिन्हें अपनी कथनी-करनी के कारण अपनी जान गंवानी पड़ी हो। गौरी लंकेश और एमएम कलबुर्गी के साथ भी यही हुआ था। माना जाता है कि गौरी लंकेश और एमएम कलबुर्गी के हिंदुत्व विरोधी विचारों से चिढ़े लोगों ने उनकी हत्या की। विंडंबना यह है कि जिन लोगों के लिए गौरी लंकेश और एमएम कलबुर्गी की हत्या गंभीर बात थी उनके लिए कमलेश तिवारी की हत्या कुछ भी नहीं। गौरी लंकेश और एमएम कलबुर्गी की हत्या के बाद जो बुद्धिजीवी तबका असिहण्णुता के खतरे को बयान करने की होड़ में लिप्त था वह अब मौन साधे हुए है। कमलेश तिवारी की हत्या से आक्रोशित लोग इस मौन का जिक्र करते हुए यह सवाल पछ रहे हैं कि आखिर वे अब कछ क्यों नहीं बोलते? यह सवाल ही व्यर्थ है। आखिर जो अपने दोहरेपन के लिए कुख्यात हैं उनसे यह प्रमाण पत्र लेने की कोशिश क्यों की जा रही है कि कमलेश तिवारी की हत्या खौफ पैदा करने वाला एक जघन्य कृत्य है? इस तबके की ओर से नीर-क्षीर विवेक का परिचय देने की अपेक्षा एक तरह की मृग मरीचिका ही है। खुद के सीने पर लिबरल-सेक्लुयर होने का बिल्ला लगाए इस तबके से कोई उम्मीद नहीं रखी जानी चाहिए, लेकिन जिन पर कानून का शासन बनाए रखने की जिम्मेदारी है उन्हें तो यह सुनिश्चित करना ही चाहिए कि कानून हाथ में लेने वालों के खिलाफ सख्ती बरती जाए। अभी ऐसा नहीं किया जा रहा है। इसका पता भीड़ की हिंसा वाली घटनाओं से भी चलता है। अगर कानून हाथ में लेने वाले हर तरह के तत्वों अथवा अपने बयानों और कृत्यों से कानून को नीचा दिखाने वालों के खिलाफ समय रहते कठोर कार्रवाई हो रही होती तो शायद कमलेश तिवारी की जान नहीं जाती।

(लेखक दैनिक जागरण में एसोसिएट एडीटर हैं)

response@jagran.com



परम धर्म

जीवन में प्रमुख रूप से तीन अंग माने जाते हैं-विचार, साधना और कर्म। फलस्वरूप मनुष्य विचारक साधक एवं कर्मठ कहा जाता है। जब मनुष्य कर्मधारा को विशेष दिशा में दृढ़ता से मोड़कर उसमें एकाग्र रहकर ध्यान जमाता है, तब उसका साधक स्वरूप दिखाई देता है। साधना के क्षेत्र में मन का बड़ा महत्व है। इसके चलते विचरण करते मन को स्थिर करके ही साधना मे रत हुआ जाता है। एक मनुष्य में यह तीनों स्वरूप मिल सकते हैं। कोई अधिक विचारक हो सकता है तो कोई अधिक साधक अथवा अधिक कर्मठ।

विचारक को दार्शनिक कहते हैं। शंकराचार्य का अद्वैत रूप विचारक या दार्शनिक का है। गोविंद भक्ति अथव संन्यासरत स्वरूप साधक का है। पानी में डूबते समय माता से धर्म प्रचार की आज्ञा मांगने वाला रूप कर्मशील पुरुष का है। तुलसीदास कृत विनय पत्रिका में माया तथा मानस में नाम और राम का विवेचन करने वाले तुलसी जी विचारक या दार्शनिक हैं। एकाग्रमन से विनयपत्रिका लिखने वाले तुलसीदास साधक रूप हैं। दुखों से संघर्ष करने वाले, शैवों की उपेक्षा को हंसकर टालने वाले तथा मित्र टोडरमल के स्वर्ग गमन के उपरांत उसके पुत्रों को प्रबोध प्रदान करने वाले तुलसीदास कर्मठ स्वरूप ही हैं

मनुष्य की भांति राष्ट्र, साहित्य एवं धर्म के भी तीन स्वरूप होते हैं। प्रत्येक संप्रदाय, मत, जाति और समाज में यह तीन अंग-दर्शन, साधना एवं व्यवहार रूप में देखे जा सकते हैं। कोई मत या धर्म दर्शन प्रधान हो जाता है तो कोई साधना या व्यवहार प्रधान। हिंदु धर्म दर्शन-प्रधान है। इसमें साधना भी बहुत फैली, लेकिन अब न साधना है और न व्यवहार। आचार्य गोरेलाल जी कहते हैं कि दूसरे के हित के समान विश्व में कोई धर्म ही नहीं है और दूसरे को पीड़ा देने के समान अधर्म या पाप नहीं है। धारण करने वाला गुण ही तो धर्म है। परहित से बढ़कर कौन गुण होगा जो समाज को धारण करेगा धर्म की कसौटी है कि मनुष्य से परहित हो। जो स्वार्थी बनकर केवल अपने सुख के लिए सब कुछ करता है, वह अधर्मी ही कहा जाएगा।

श्रीमती रमन त्रिपाठी

नेत्र रोग का बढ़ता दायरा

विश्व स्वास्थ्य संगठन की ओर से जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया में दो अरब से ज्यादा लोग नेत्र समस्याओं और दृष्टिबाधिता से पीड़ित हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की नेत्रों से जुड़ी समस्याओं पर अब तक की यह पहली रिपोर्ट है। रिपोर्ट में आशंका जताई है कि आगामी दशकों में जनसंख्या वृद्धि और बुढ़ापे के साथ-साथ जीवनशैली में परिवर्तन एवं शहरीकरण से नेत्र विकारों, दृष्टिबाधिता और नेत्रहीनता से पीड़ित लोगों की संख्या में नाटकीय ढंग से बढ़ोतरी हो सकती है।

इस रिपोर्ट में ऐसे तथ्य हैं जो दर्शाते हैं कि आंखों की समस्याएं जीवनशैली में आए बदलावों से भी बढ़ रही हैं। इनमें विशेष तौर पर टीवी, मोबाइल और कंप्यूटर स्क्रीन पर ज्यादा समय बिताने से होने वाली समस्याएं भी शामिल हैं। कमजोर नजर से पीड़ित बच्चों की संख्या बढ़ने का एक बड़ा कारण यह है कि बच्चे अब ज्यादा समय घर से बाहर नहीं बिताते हैं। घर के अंदर रहने की सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि आंखों के लेंस को आराम ही नहीं मिल पाता। घर के बाहर बिताए जाने वाले समय और बाद

यूएन स्वास्थ्य एजेंसी की रिपोर्ट दर्शाती है कि आंखों की समस्याएं जीवनशैली में आए बदलावों से भी बढ़ रही हैं

में होने वाली कमजोर दृष्टि की समस्याओं में स्पष्ट संबंध है। निःसंदेह आधुनिक युग में सभी लोग मोबाइल-लैपटॉप, कंप्यूटर पर निर्भर हो गए हैं। अब ऐसा कोई दफ्तर नहीं है जिसमें कंप्यूटर पर काम न हो। रजिस्टर, कलम का जमाना तो बहुत पीछे छूट चुका है।

हालांकि इससे काम काफी तेजी एवं पुख्ता से हो रहे हैं, लेकिन हम इस रफ्तार में अपने स्वास्थ्य को खतरे में डाल रहे हैं। मसलन लंबे समय तक मोबाइल का इस्तेमाल करने से उसकी स्क्रीन से निकलने वाली इलेक्ट्रोमैग्नेटिक किरणें आंखों के विभिन्न हिस्सों जैसे रेटिना और कॉर्निया पर अपना असर डाल रही हैं। 2007 में हुए एक शोध के अनुसार कम दायरे में देखने के कारण भी आंखों की रोशनी कम होती है। यानी जब हम एक केंद्रीय बिंदु पर अधिक देर तक ध्यान

लगाए रहते हैं और अन्य वस्तुओं को नहीं देखते तब भी हमारी आंखों की रोशनी कम होती है। उम्रदराज युवाओं में यह समस्या अधिक देखने को मिलती है। लगातार कंप्यूटर स्क्रीन पर काम करते रहने से उनमें असहजता, खुजली महसूस होने लगती है। आमतौर पर आंखें एक मिनट में 12-15 बार झपकती हैं, लेकिन कंप्यूटर स्क्रीन पर काम करने वाले एक मिनट में केवल 4-5 बार ही आंखों को झपकाते हैं। आंखों को कम झपकाना और अधिक समय तक काम करते रहने से ड्राई आई सिंड्रोम, खुजली जैसी समस्याएं होती हैं। वहीं दूसरी ओर कंप्यूटर पर लगातार काम करने वालों की आंखों से पानी निकलने की समस्या भी हो जाती है, क्योंकि आंखें नहीं झपकाने से पानी सही तरीके से आंखों में फैलता नहीं और उससे खुजली होती है। लगातार टीवी देखने से आंखों की रोशनी कम होने लगती है, क्योंकि टीवी से निकलने वाली घातक किरणें हमारी आंखों को बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचाती हैं।

निःसंदेह हमें नई तकनीक से जुड़े रहकर आगे बढ़ने के साथ अपने स्वास्थ्य का ख्याल

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

अव्यावहारिक सुझाव

स्कूली शिक्षा में सुधार का सही उपाय शीर्षक से लिखे अपने लेख में प्रो. गीता गांधी किंगडन ने वाउचर व्यवस्था को प्राथमिक शिक्षा में लागू करने पर बल दिया है, जो कि देश और परिस्थिति के विपरीत ही नहीं, बल्कि पूर्णतः अव्यावहारिक भी है। भारत की तुलना अमेरिका से करना कहां तक उचित है? भारत में लागू होने वाली कोई योजना स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बनाई जा सकती है। भारत कृषि प्रधान देश है और अधिकांश लोग ग्रामीण परिवेश में रहते हैं। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाए कि प्रत्येक अभिभावक के खाते में एक निश्चित धनराशि भेज दी जाए तो वह शिक्षा के बजाय अपनी अन्य मूलभूत जरूरत को पूरा करने में खर्च कर देगा, न कि बच्चों की शिक्षा पर। यह सुझाव अपरोक्ष रूप से निजीकरण को बढ़ावा देने वाला है। वास्तव में सरकार यदि स्कूली शिक्षा को सुधारने के प्रति गंभीर हो तो उसे सर्वप्रथम विद्यालयों में शिक्षकों की कमी को दूर करना चाहिए और सभी प्राथमिक विद्यालयों को बेहतर सुविधाओं और आवश्यक संसाधनों से लैस कर देना चाहिए। जिस तरह से सरकार ने मध्याह्न भोजन योजना के माध्यम से कुपोषण जैसी समस्या पर सफलता अर्जित की है ठीक उसी तरह से सरकार चाहे तो शिक्षा की बेहतरी के लिए ठोस कदम उठा सकती है।

सर्वजीत आर्या, कन्नौज

ताकि लोग निरोग रहें

बरसात और बाढ के बाद अब बीमारियों का दौर शुरू हो गया है। देश के कई बड़े शहरों में अप्रत्याशित बाढ़ और फिर फैलती बीमारियों का सामना करने में सरकारें नाकाम दिखीं हैं। कुदरत का कहर अपने हाथों में नहीं है, लेकिन कुदरत

मेलबाक्स

की व्यवस्था से छेड़छाड़ ही इस तबाही की मूल वजह है। इसे विडंबना ही कहेंगे कि जल संरक्षण का पाठ पढ़ाती सरकारें जल निकासी का रास्ता ढूंढती रही हैं। रिहायशी इलाकों में जल जमाव और उससे पैदा होती बीमारियों को लेकर दूसरों पर दोषारोपण कर जिम्मेदारी से नहीं बचा जा सकता। हवा-पानी के रास्ते में रुकावट पैदा करने वालों पर सख्त कानूनी कार्रवाई होनी चाहिए। आपदा प्रबंधन और सेना का इस्तेमाल लोगों को बचाने और नालियों की सफाई के लिए नहीं किया जाना चाहिए। बैठे-बैठाए बीमारियों को न्योता देने से बेहतर है शहर-मोहल्लों के घर छोटे ही सही, मगर नालियां बड़ी बनें, ताकि शहर साफ और लोग निरोग रहें। mkmishra75@yahoo.in

कमजोर होती कांग्रेस

हरियाणा एवं महाराष्ट्र कभी कांग्रेस का गढ़ रहा, लेकिन अब इन दोनों राज्यों में कांग्रेस की हालत काफी पतली है। इन राज्यों में चुनाव के बाद एक्जिट पोल के अनुसार अब भाजपा और उसकी सहयोगी पार्टियां दो तिहाई बहुमत से इन दोनों राज्यों में सरकार बनाने जा रही हैं। कांग्रेस के इस पतली हालत के लिए खुद कांग्रेसी जिम्मेवार हैं। कांग्रेस में संगठन का अभाव दिखाई दे रहा है। चुनाव जीतने के लिए कोई रणनीति दिखाई नहीं दी, कांग्रेस के अंदर मोदी जैसे नेतृत्व की कमी एवं पार्टी के अंदर गुटबाजी रही। यह कांग्रेस के लिए शुभ संकेत नहीं है। कांग्रेस को संगठन और नेतृत्व दोनों को ठीक करने की जरूरत है। स्वस्थ लोकतंत्र में विपक्ष भी मजबूत होना चाहिए।

विजय तिवारी, शिक्षक, नई दिल्ली

गुलाम कश्मीर है मुद्दा

पुकिस्तान को अब कश्मीर का राग अलापना बंद कर देना चाहिए, क्योंकि इसे भारत ने अब हल कर लिया है। अगर वह कुछ करना ही चाह रहा है तो अमन और शांति के लिए अपने घर में पल रहे आतंकियों और उनके अड्डों को शीघ्र ही काबू में करे। वैसे भी कश्मीर के बजाय असली मुद्दा तो गुलाम कश्मीर है, जिस पर उसने कब्जा कर रखा है।

mahesh_nenava@yahoo.com

सुरक्षा एजेंसियों की चुनौती

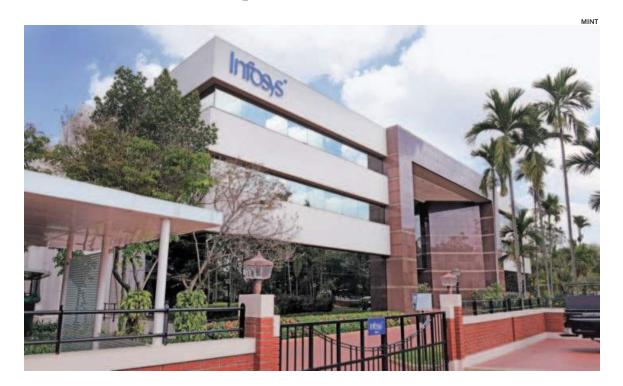
हिंदूवादी नेता कमलेश तिवारी की हत्या के पीछे बड़ी साजिश सामने आई है। यह सुरक्षा एजेंसियों के लिए गंभीर चुनौती है। जिस तरह से हत्यारों के संपर्क विभिन्न राज्यो से मिल रहे हैं और हत्या के लिए पहनावा ही नहीं बदला अपितु धर्म विशेष के बारे में अध्ययन भी किया। ऐसा साधारण अपराधी नहीं कर सकते हैं। अतिविशिष्ट लोगो की सुरक्षा में लगी एजेंसियों को इसे गंभीरता से लेने की जरूरत है।

श्रीनिवास यादव, गाजियाबाद

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं। अपने पत्र इस पते पर भेजें :

दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण, डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा ई-मेल: mailbox@jagran.com

OUR VIEW



The Infy investigation needs a broader ambit

The software major has been rocked by whistleblower charges that need a probe. The company has initiated one. But its scope should include fresh questions that have arisen

ome two years ago, when Infosys Ltd. co-founder Nandan Nilekani returned to the company as chairman after the exit of then chief executive officer (CEO) Vishal Sikka amid concerns of corporate governance lapses, its shareholders thought the worst was behind them. Little did they expect half a trillion rupees of the software major's market capitalization to be wiped out in a single day, as happened on Tuesday, the first day of domestic trading after it was rocked by allegations of scandalous behaviour at the top. No charge has been proven yet, but in the eye of the latest storm are its current CEO Salil Parekh and chief financial officer Nilanjan Roy. An anonymous complaint, purportedly filed by a group of employees by means of a letter to its board dated 20 September, accuses Parekh and Roy of demanding "unethical accounting practices" designed to overstate quarterly profits and revenues and thereby prop up Infosys's share price. Not only were accounts being fudged, the whistleblowers allege, but deprecatory words were also used by top executives for a few non-executive board members. In a statement issued on Tuesday, Nilekani said that Infosys had placed the letter before its audit committee, which had started consultations with an independent internal auditor to probe the matter.

What's true and what's false would take time to determine. However, given the high levels of transparency expected of Infosys, whose success is an integral part of India's entrepreneurial story, it would be best if the investigation broadens its scope to include other questions that have arisen. While a delayed response to the blow of a whistle is under-

standable, since a large number of such incoming messages are frivolous, there is a long gap between the receipt of the complaint on 30 September by a board member, as Nilekani's statement dates this event, and it being turned over to the audit committee, which was done on 10 October. Stock exchanges were informed even later, on 21 October. Prima facie, this seems to be in accordance with legal principles on how to proceed in such cases. The gravity of the charges was for Infosys to determine, and the firm has stated that it did not receive any corroborative material by way of emails or voice recordings. Yet, for the sake of investor confidence, the probe should examine whether its public disclosure took longer than it ought to have.

The timeline assumes importance for the reason that the information had the potential to influence the market price of the company's stock. Moreover, all listed firms are required to keep the public informed of such developments. Delays create space for suspicions of insider trading. There has been some speculation among traders on social media over allegedly unusual positions taken on Infosys shares. Attention has been drawn to some put options-which let traders make gains off a price slide in the future—said to have been bought in advance. These could simply be part of a regular trading strategy, but if data patterns warrant a closer look, then these may need to be probed as well. It is not in the interest of Infosys shareholders alone to attain clarity on this episode. With its founders serving as role models for entrepreneurs across the country, every citizen qualifies as a stakeholder in this case. Infosys has bounced back from a crisis before and we expect it to do so again.

MY VIEW | ARTHANOMICS

Why higher taxes are not the way to better welfare in India

Unlike in the West, conditions in the country are not suitable for soak-the-rich policies to succeed



R. JAGANNATHAN is editorial director, 'Swarajya' magazine

bhijit Banerjee, winner of the 2019 Economics Nobel along with Esther Duflo and Michael Kremer, has been talking up the idea of high and rising marginal tax rates for the rich. He has also criticized the Narendra Modi government's recent corporate rate cut and said the money would have been better spent on the poor, which would have helped revive demand. He argues that there is no evidence that high tax rates deter investment or growth.

One need not quarrel with the idea of putting more money in the pockets of the poor, provided it can be funded appropriately and without setting off high inflation. But it is surprising that he should be advocating soak-the-rich policies in a country which is estimated to have lost around 5,000 millionaires in 2018 alone, according to an AfrAsia Bank-New World Wealth report. While the rich may be leaving India for reasons other than just high tax rates, surely, hiking marginal taxes will hardly convince them to return and invest in this country. Jobs and growth are created by boosting investment and entrepreneurship, not just consumption.

There have been studies to suggest that high marginal tax rates do not endanger growth, and the Eisenhower era US top rate of 91% is often cited as evidence that one should indeed fleece the rich to fund welfare. A research

study by Peter Diamond and Emmanuel Saez of MIT and University of California at Berkeley, respectively, has even recommended that the US raise its top marginal tax rate to 73%.

Evidence from Europe, especially Scandinavia, where the top marginal rates are usually in the 40-50%-plus range, also suggests that the rich do not flee high-tax jurisdictions.

The problem with these arguments is that they are being universalized without context. If the US and Europe can raise taxes without investors voting with their feet, it is because they are globally powerful and their governments can impose their laws on smaller countries and tax havens. Consider how easilv Indians have been forced to comply with the US Foreign Account Tax Compliance Act, though the US has no jurisdiction over Indian citizens. Equally, totalitarian countries can enforce high rates. Consider the case of China, where financial repression is the norm and the state can commandeer resources from anyone with its ability to track almost every citizen in every activity.

Monocultural countries also find it easier to tax their citizens at a high rate; acquiescence is aided by the public knowledge that these taxes will serve to benefit someone we can identify with in terms of race or kinship. Once countries become diverse and culturally divergent, this willingness to pay high taxes reduces—as is the case with India.

To repeat, high tax rates are likely to work if a country offers huge economic opportunities, can enforce compliance even outside its sovereign jurisdiction, is largely homogeneous and mono-cultural, makes a reasonable assurance that the money will be put to good use, and its economy is largely free of corruption and the legal system is capable of punishing violations.

Almost none of these conditions are true in India at this stage of its development, and even small efforts to enforce better tax compliance attract the charge of tax terrorism, which may be partially true, given the venal nature of our bureaucracy and the legal system's endless delays. As for corporate taxes, even the US finds it tough to prevent corporations from keeping their profits abroad in tax havens. Competitive tax rates are thus crucial till we reach a global understanding that countries must not compete on tax rates.

But beyond the simple ability to impose high marginal tax rates on individuals, there is the question of desirability. Despite high state capacity in advanced countries, few people would argue that states can spend money more efficiently than private parties. In India, this is even more true. In these circumstances, a rupee left in the hands of private individuals and companies may be put to better use than if handed over to politicians and bureaucrats.

It is also time to question the basic hypothesis that states can deliver welfare better to the poor, and that higher taxation is the way to fund this munificence. The marginal utility of higher incomes reduces as one moves up the income scale. This implies that beyond a certain level of income, wealth and personal consumption, the rich work largely to earn psychological rewards-by winning against competitors, taking on new challenges, earning plaudits from peers, and contributing to society. This may sound like an argument for higher taxation, but it is actually an argument to incentivize the rich to do more for society.

Ask yourself: If toilets have to be built for the poor, is it more likely that the Tatas would do it well or the government? So, rather than tax the Tatas and get the government to spend money on building poor quality toilets, wouldn't it make more sense to incentivize the Tatas (or Birlas, or Ambanis or Shiv Nadars and Azim Premjis) to promote social entrepreneurship and investment in human capital?

Companies and individuals are more primed to deliver better outcomes. It is time to let go of the idea that higher taxes are the way to better welfare.

10 PCARS AGO



JUST A THOUGHT

Corporate governance should be done more through principles than rules.

ADI GODREJ

MY VIEW | EX MACHINA

The case for meat options that taste like the real thing

RAHUL MATTHAN



is a partner at Trilegal and author of 'Privacy 3.0: Unlocking Our Data Driven Future'

ccording to the United Nations Food and Agriculture Organization (bit.ly/2MXe4Ja), rapid increases in the demand for foods derived from animals has led to an unprecedented increase in livestock production. Livestock accounts for about 40% of the global value of agricultural output today and supports the livelihoods and food security of almost 1.3 billion people on the planet. The total volume of land set apart for grazing and for the cultivation of crops dedicated to feeding livestock represents almost 80% of all land under agricultural cultivation today.

Animal husbandry has become an industrial enterprise designed to churn out livestock like widgets. Modern livestock farms are factories, keeping animals indoors so that they can be fed to a plan and bred faster. As a result of all of this, the average time-to-market for a US chicken has come down from 112 days to 48 over the last century, while its weight has more than doubled. Estimates vary, but in general farming today

uses up anywhere between 70% and 90% of the world's freshwater.

This has come at significant environmental cost. Because of the huge amounts of nutrients and organic by-products of animal farming that make their way into our water bodies, the algae and plants in our lakes and ponds have begun to grow aggressively, using up all the oxygen available at the expense of other species. A recent study in *Nature* magazine (*go.nature.com/2pTrxXv*) indicated that 72-78% of all food related greenhouse gas emissions are related to animal products. According to the study, the environmental impacts of the food system exceeds the planetary boundaries for foodrelated greenhouse gas emissions by 110% for cropland use by 70%, for nitrogen application by 125%, and for phosphorus application by 75%.

Unless we make drastic changes to our global dietary habits, we will not be able to meet our planetary target of keeping global warming to under 1.5 degrees Celsius. This means that everyone on the planet will have to eat, on average, 75% less beef, 90% less pork and half the number of eggs, while tripling our consumption of beans and pulses and guard warding the number of eggs.

and quadrupling the nuts and seeds we eat. As an unabashed lover of food, I find all this deeply disconcerting. I absolutely relish the many different flavours, tastes and textures of animal proteins, and the thought of having to live the rest of my life eating only plant-based foods gives me the chills. But given what industrial production of animals is doing to the planet, it doesn't seem like we have many other options.

For more than a few years now, I have been hearing about new meat substitutes that are supposed to taste, smell and feel so much like real meat that it is impossible to tell the difference. There are a number of companies competing to produce the most authentic faux-protein, the most famous of which is arguably Impossible Foods, which has recently started retailing

its meat products in grocery stores around the US. The company's most sought-after product is the Impossible Burger, a patty made from a combination of soy and potato proteins, coconut and sunflower oils and food starch that offers the texture, sizzle and taste of a real burger.

Central to its verisimilitude is a food molecule called heme that Impossible Foods claims to have been the first to identify. Heme is found in every living plant and animal, but is most abundantly available in animal tissue. This, apparently, is what makes meat taste like meat and what we yearn for

It is only by

making drastic

changes to our

dietary habits

that we can

meet our

planetary goals

meat and what we yearn for when we bite into a burger. Plant-based heme is widely available—most commonly in the root nodules of soybean plants—but Impossible Foods seems to have found a way to produce heme at an industrial scale through the fermentation of genetically engineered yeast. This is what makes their meatballs, kebabs, sausages and burger patties so hard to distinguish from the real stuff.

I wanted to see for myself whether this was true or not. Therefore, last week when I was in Washington, I walked into a restaurant and did a taste test. I did not have the time to organize a full-on double-blind trial. Thus, I did the next best thing. I asked the server to get me two burg-

ers—one regular and the other made from

the Impossible Meat burger patty—and asked the server to make sure that they looked as much like each other as possible. I then asked him not to tell me which one was which till I was done tasting.

When the burgers were brought to my table, I tried my best to see if there were any visual differences between the two. To the naked eye, it was impossible to tell them apart, and when I first bit in, there was literally no difference in terms of mouth-feel, texture or taste. Given all that I had read, I knew I was not going to be served some bland, meat flavoured tofu, but even so, I was pleasantly surprised by how authentic it felt. As I made my way through the burgers, I began to pick up a few subtle differences: just the tiniest hint of a stronger Maillard reaction on one over the other that made the caramelization on the burnt ends just a tad

more authentic.
I guess it is still possible to tell Impossible
Meat from the real stuff—if only just. However, I have no doubt that even these differences will soon be too subtle to detect. Given human consumption patterns, it seems inevitable that we will need to change the way we farm. In which case, instead of banning meat altogether, we'd do well to encourage a tasty alternative.

MY VIEW | CAFE ECONOMICS

What a look at the long waves of India's credit cycle could tell us

Bank lending should normally outpace nominal GDP in an emerging economy, but that's not the case in India right now



is a member of the academic board of the Meghnad Desai Academy of Economics

he length of the average Indian financial cycle is 15 years, according to recent research by economists at the Reserve Bank of India (RBI). There was thus good historical reason to hope that the financial downturn that began around seven years ago would bottom out soon. However, the silver linings seem to be getting blurred again.

The recent collapse of a cooperative bank in Mumbai, the deepening crisis among non-bank financial companies (NBFCs), subterranean fears about the stability of some banks, and the unusual statement issued by the Indian central bank on 1 October that the banking system is "safe" are some indications of how the malaise in the financial sector persists.

Here are some relevant numbers. In the first six months of the current fiscal year, most of the new deposits that banks have collected since April have been parked in government securities rather than being lent to enterprises. Aggregate deposits till the week ended 27 September grew by 3.32 trillion. The increase in investment in government securities was of almost the same amount—₹3.10 trillion. Food credit grew by ₹18,475 crore while non-food credit fell by ₹18,887 crore. So, there was almost no increase in bank credit to the private economy as a whole.

Bank credit growth has been weak for many years. The slack in bank lending was until recently picked up by NBFCs and, to a lesser extent, by funding from the financial markets, which is available only to large companies. However, even the NBFC lending pipe is now choked.

A table from the new *Monetary Policy Report*, published by the central bank earlier this month. shows that growth in total funding to the commercial sector from both bank and non-bank sources has collapsed this fiscal year till mid-September. It is not a pretty picture.

The total flow of funds has come down sharply from ₹7.36 trillion in the first six months of fiscal year 2018-19 to a mere ₹90,995 crore in the same period this fiscal year. Nearly half of that reduction is explained by the decline in lending by banks and NBFCs. My guess is that the reduction in financial support to the industrial sector is

inventory destocking by firms that are seeing weak demand while the decline in funds flow to the services sector is a sign of stress in the real estate industry. These two micro factors are overlaid on an overall drop in nominal gross domestic product (GDP) growth to perhaps its lowest level in two decades

The funds crunch would have been worse if it had not been for foreign capital inflows, through either foreign direct investment (FDI) or external



commercial borrowings (ECBs). Needless to add, such foreign capital inflows are sensitive to global financial or geopolitical shocks. They provide relief, but are also a source of funding risk.

The growing dependence on foreign capital inflows to fund the Indian commercial sector fits well with deepening fears of a lower domestic savings rate, especially a sharp decline in the net savings rate of households, which have borrowed to maintain consumption levels during a period of weak income growth. The hidden message here is that India could face current account pressures if there is a domestic investment revival without a matching revival in domestic savings.

This column began with a long-term argument about the length of the Indian financial cycle, before going into recent credit data. Here is a final data point that switches attention back to the longer term. The Bank of International Settlements provides a very useful data series on what it calls the credit gap, which measures the extent to which the ratio of credit-to-GDP has deviated from the historical trend as calculated by the Hodrik-Prescott filter. The credit gap has been

negative for 22 consecutive quarters now, or the credit-GDP ratio has been below trend. Compare this with

55 quarters of a positive credit gap from the three month period ended December 2000.

A developing economy such as India should normally have bank credit growing faster than nominal GDP because of financial deepening. The recent negative credit gap should also be seen in the context of a broadening of the sources of finance, especially from financial markets as well as NBFCs. Yet, there is no doubt that the credit gap has been negative since the end of

Economists have for long debated whether bank credit moves in tandem with the economy, anticipates what is going to happen in it, or moves

a lag. An analysis of India's boom in bank credit followed by a bust is profoundly dependent on the answer. It is an issue this column will soon return to. Till then, it is important that the Indian public debate focuses on not just immediate bank credit data, but also on longer waves.

GLOBAL VOICES

No persuasive evidence in Clinton email probe

hat about her emails? Donald Trump raised that question like a red flag for three years, as candidate and president, casting doubts on how Hillary Clin $to n used a \, private \, email \, server \, to \, communicate \, with \, her \, staff \, and \, others \, while \, she$ was secretary of state. "Hillary set up an illegal server for the obvious purpose of shielding her criminal conduct from public disclosure and exposure, knowing full well that her actions put our national security at risk," Trump said late in the campaign. Now a three-year State Department investigation has found that, while about three dozen people violated protocols about classified material, they "did their best to implement them in their operations" and "there was no persuasive evidence of systemic, deliberate mishandling of classified information."

The keeping and preservation of records isn't just a matter of concern for historians, it is essential to the smooth functioning of the government. When government officials do business outside official channels, it not only hampers the business of governing, it also raises the concern that there is something to hide. A State Department investigation in 2016 found that other secretaries of state had handled classified information on unclassified email systems. While Mrs. Clinton's name will always be associated with the practice, it is disappointing to see the use of personal email accounts proliferate across the government.

The New York Times

Netanyahu's reign might still not be over

he announcement by Israeli Prime Minister Benjamin Netanyahu that he has abandoned his latest attempt to form a governing coalition, after two general elections within a calendar year, might be seen in some democracies as marking the end of his decade in power. But in the case of Israel, such an assumption would be premature. The onus of forming a government and—at least as importantly for weary voters—avoiding a third successive election now falls to Blue and White, itself a coalition created to wrest the country from Netanyahu's grip... But what would a future without the longest-serving prime minister in the nation's history

The very length of his tenure means that Netanyahu has become the face of every impasse in Israeli public life, from the failure to reconcile the country's religious and secular communities to African immigration... How Blue and White's leader, former military chief Benny Gantz, might change any of this is not clear. But it should surprise no one if, four weeks from now, Mr Gantz still faces the prospect of a rotating prime ministership with Netanyahu, and ends up taking the first twoyear turn in charge so that his rival has time to clear a daunting legal inbox.

The Sydney Morning Herald

The WhatsApp revolt in Lebanon

ot since the Cedar revolution of 2005, which resulted in Syrian forces leaving the country after 15 years of post-civil war involvement, have crowds taken to the streets of Lebanon in such numbers or for so long. Protesters blocked roads and forced schools, banks and businesses to close... Far from petering out, the movement appears to be gaining momentum and now poses a serious challenge that the government of Prime Minister Saad al-Hariri cannot dismiss. Public discontent tipped after the cabinet approved a range of new taxes, among them a levy on use of the messaging tool WhatsApp. The government, which presides over one of the $most \, indebted \, states \, in \, the \, world, \, with drew \, the \, Whats App \, tax, \, but \, it \, was \, too \, little, \,$ too late. The protests reflect much wider, long-simmering anger over Lebanon's crumbling services, price rises and what many Lebanese see as a culture of corruption and nepotism in the ruling elite.

In Tunis and Cairo in 2011, incumbent governments misjudged the scale of public anger and wrongly assumed that expressions of sympathy would amount to an adequate response. Sheikh Hassan Nasrallah, leader of Hizbollah, the most powerful political force in the country, has said he opposes the government's resignation. But even that may not be enough. If the political class wants to get ahead of the crisis, it may require the dissolution of the parliament itself.

The Irish Times

The IMF's troubling economic outlook

he global economy continues to slow and the primary problem is the geopolitical outlook. That is the primary message in the latest International Monetary Fund World Economic Outlook, released last week in anticipation of the fall meetings of that organization and the World Bank. Other dangers loom, however, and policymakers must be alert to a range of challenges that threaten global stability and well-being. Growth in 2019 will be the weakest since the 2008 financial crisis. The IMF anticipates global growth of 3 percent, a drop of 0.3 percentage points from its April forecast, and a substantial reduction from the 3.6 percent expansion that occurred last year. The risk factors are well known: the US-China trade war, rising tensions in the Middle East and the Persian Gulf, Brexit and a slowdown in the largest economies. Trade disputes are the biggest problem.

Japan's economy is anticipated to grow just 0.5 percent next year, its structural problems compounded by the trade war waged by its two largest trade partners... To their credit, Japanese companies have improved profitability and, almost alone, reduced speculative debt, but a downturn on the scale of the global financial crisis would render too large a portion of corporate debt unserviceable. Alert and antici $patory\ policy\ is\ required; while\ their\ influence\ is\ limited, Japanese\ policy makers$ must do more to shape the global economic environment.

The Japan Times

THEIR VIEW

The RCEP as a trade opportunity rather than threat

PRADEEP S. MEHTA



is Secretary General of CUTS International

n 2013, a World Trade Organization highlevel panel, of which yours truly was a member, estimated that the share of intermediate goods in global merchandise trade was anywhere between 60% and 70%. In recent years, as pointed out by the World Bank in its World Development Report (WDR) 2020, owing to a spate of protectionist policies around the world, it has come down to 50%, but remains substantial.

India has been poor in accessing Global Value Chains (GVCs)—about 16%—but the opportunity to change that is knocking on our doors by way of the Regional Comprehensive Economic Partnership (RCEP) deal

Furthermore, the RCEP is important for our strategic interests, and to resuscitate a rules-based international trading order.

That said, the import of high quality and/ or less costly intermediate inputs is shown to have multiple benefits: cheaper access for end consumers; positive effect on the productivity of firms; raised export growth; expanded employment and increased domestic income. With apt policies, the benefits can eventually reach the poor and less fortunate by creating jobs and job creators.

The import of intermediate goods and their use in exports is also made possible through GVCs. The WDR notes that GVCs have helped poor countries grow faster, created new jobs and lifted many out of poverty. A single percentage point increase in GVC

participation is estimated to boost per capita income levels by more than 1%, much more than the 0.2 % income gain from standard trade, says the WDR. These value chains can foster inclusive and sustainable growth, create better jobs, and reduce both poverty and inequality if developing countries implement deeper reforms and industrial countries pursue open, predictable policies.

This does not mean that domestic value addition is not important. According to a recent study by the Indira Gandhi Institute of Development Research reported in this newspaper on 18th October, Exports, Global Production Sharing, And Jobs In India (bit.ly/32pDaqu), between 1999-00 and 2012-13, the domestic value-added content of India's aggregate exports increased significantly from \$46 billion to \$234 billion. Also, export-related jobs grew faster than total employment.

India has not been able to fully exploit the potential of GVCs in the past, owing to our extremely cautious approach towards foreign goods and services, and our apparent inability to implement difficult domestic reforms. We have now been presented with an opportunity in the form of the RCEP,

which includes the most dynamic economies of the Asia-Pacific region, to correct course and truly partake in the GVC revolution. Joining the RCEP would thus make eminent sense.

Globally, the import content in exports has risen from around 20% in the 1970s to around 40% in 2013. In India's case, following an increase from around 19% in 2005 to around 25% in 2011, the foreign-value added con-

tent of India's export has declined sharply to around 16 % in 2016.

While some civil society organizations (CSOs) have opposed India's entry to the RCEP citing concerns of a huge upsurge in imports, the government must make a decision informed by vision, evidence and experience, and not by rhetoric. Since opposition to any major move, especially a difficult one, is considered fashionable these days, criticism of the idea naturally grabs the attention of the media, which doesn't always seem keen to cover unpopular counter opinions. Many CSOs, including CUTS Interna-

tional, have analysed evidence across countries for **Joining the RCEP** years, and thus have been arguing that it is possible could boost for India to gain from the RCEP. This needs to be productivity, coupled with the right set bolster our of policies, particularly domestic reforms that 'Make in India' would help run a business by reducing input costs agenda and such as on finance, power and logistics, removing deliver gains bureaucratic hindrances.

> Instead of considering measures like export and import restrictions, Indian policymakers should focus their energy on creating conditions for domestic stakeholders to use the opportunity to add value in GVCs formed under the RCEP. Measures to reduce input costs—by facilitating easy access to

and encouraging active

cooperative federalism.

factors of production, leading to enhanced productivity-will enable firms to efficiently add value and command decent margins in international markets.

India is currently experiencing a slowdown in consumption, traceable in part to unsatisfactory levels of disposable income among workers across various sectors. A well thought out and harmonized approach to the RCEP, linked to an improvement in wages and conditions of workers, may not only be required from the perspective of sustainable development and inclusive growth, but also for boosting domestic demand.

Going forward, India should embrace GVCs, the RCEP in particular, as it has more to lose than others by staying out. It would raise productivity, which is necessary to create export-oriented jobs with better wages, and help the Make in India programme. India needs the RCEP more than the other way around. This government has time and again shown the resolve to take difficult decisions that would deliver gains in the long run. It should not lose this opportunity.

Most importantly, we need to reduce transaction costs for our businesses to help them become competitive globally. An embrace of the RCEP could and should hasten our domestic reforms agenda.

The Tribune

ESTABLISHED IN 1881

Below-par turnout

Urban voters' apathy writ large in Haryana, Maharashtra

OR the second time in six months, people of Haryana and Maharashtra came out to exercise their franchise. Haryana recorded 68.31 per cent polling in the Assembly elections, marginally less than the state's turnout (70.36 per cent) in the 2019 Lok Sabha polls. Maharashtra witnessed 60.83 per cent voting, almost the same (60.79) as in the parliamentary battle. However, both states saw a significant drop in vote percentage compared to the 2014 Assembly elections, when the figures for Haryana and Maharashtra were 76.54 and 64, respectively.

A higher turnout is often linked, at times erroneously, to anti-incumbency, while a lower percentage is perceived to be an indicator that the electorate prefers continuity to change or is not bothered either way. A notable exception was the Punjab Assembly elections of 2012, when the Akali-BJP alliance retained power despite an impressive turnout of 78.57 per cent. Whatever might be the correlation between these entities, the dismal show in Gurgaon (52.36 per cent) and the 10 constituencies of Mumbai City district (around 47 per cent) is a clear sign of indifference among urban voters. The apathy is all the more glaring in the country's commercial capital and film hub. The upscale Colaba was among the worst performers in Maharashtra, even as voters of tribal areas in districts such as Thane and Palghar made their presence felt.

The reluctance of city residents to vote can be partly attributed to a sense of inevitability about the election results. The Opposition parties in both states failed to offer a credible alternative. Plagued by factionalism and defections, the Congress and other outfits missed the chance of cornering the ruling party on issues such as economic slowdown, unemployment and the persecution of minorities. The one-sided outcome of the Lok Sabha elections, too, cast a shadow on the state polls. Still, the Election Commission needs to explain why the sizeable increase in voter enrolment — about 20 lakh in Haryana in five years — did not translate into a higher voting percentage. The lukewarm response to the poll panel's voter awareness campaign does not bode well for our democracy.

Short on expectation

NCRB's failure to report lynching is a letdown

ESPITE the delay of over a year, the National Crime Records Bureau (NCRB) report revealing the crime data of 2017 released on Monday is conspicuous by the absence of statistics of the keenly anticipated new sub-categories of murder. Following a spurt of murders by mobs and influential people and for reasons of religion or those ordered by khaps that shook the nation in 2015-16, the pro forma was revised to include such killings. The cloak of secrecy afforded by the failure of the government to publish the data compiled on these notorious scores is a huge letdown. It does little towards ensuring justice to the hapless victims of these communal and reprehensible crimes committed in broad daylight. Rather, the patronising suppression of data will only encourage the perpetrators. Already, RSS chief Mohan Bhagwat has dodged the issue with his derisive comment: lynching is a 'western construct' and should not be used to 'defame' India.

Acknowledgement of a criminal activity holds the key to its redress. Making public the unflattering figures is the stepping stone to an informed debate by the citizens and government; statistics are the base for reformist policies and laws to curb violence. The Modi government's propensity to hide unfavourable data is a crime that will not only cost it politically, but also prevent the nation from moving forward.

However, thankfully, the NCRB has not shied away from coming out with figures for the other new crime category: circulation of fake news and rumours. Topping the list are MP (138 incidents), UP (32) and Kerala (18). Incidentally, J&K, where communication channels have been severely curtailed since the abrogation of Article 370, reported four cases. Meanwhile, criminal activity has escalated in the country, calling for better policing and deliverance of justice. Shamefully, both homes and roads remained unsafe for women as brutalities heaped on them in the form of cruelty by husband, assaults, kidnappings and rape show no sign of abating. Add to it cyber space where cyber crime mainly related to fraud and sexual exploitation is trending upward. It's time to act.

Not competitive enough

World Economic Forum report ranks India 68th out of 141 countries



SENIOR ECONOMIC ANALYST

URING a 17-month period ending this August, 56 companies relocated their production out of China. Of these, 26 went to Vietnam, 11 to Taiwan and eight to Thailand. The rear was brought up by India which got three, and Indonesia two.

Obviously, India's 'Make in India' policy launched five years ago is making indifferent progress. Finance Minister Nirmala Sitharaman has said she would prepare a blueprint with which to attract to India companies going out of China. She can do worse than taking a look at a structured study, the latest (2019) Global Competitiveness Report brought out by the World Economic Forum. The Global Competitiveness Index, on which the report is based, has been refined since 2004 and the exercise offers a ready reckoner of what a country needs to do to go forward in the competitiveness stakes.

In the 2019 report India ranks 68 out of 141 countries, that is around the halfway mark. Vietnam emerges one rank ahead. Other comparable countries which are ahead of India are South Africa (rank 60), Indonesia (50) and Mexico (48). China is way ahead at 28, just one rank behind Malaysia (27), which has long been able to play host to factories migrating out of Japan and South Korea.

Where does India score and fail to do so according to this league table? Of the 12 attributes that make up the overall competitiveness score of a country, India does well (above rank 50) on four and not well (below rank 100) on five.

India does well on the attribute of macroeconomic stability and the size



LAGGING: Abundant supply of skilled manpower, which India lacks, attracts factories. The future prospect of having a trained labour force also appears poor.

Of the 56 companies that relocated production out of China, 26 went to Vietnam, 11 to Taiwan and eight to Thailand. Only three companies set up their base in India.

of its market and tops the global list on inflation control. On the financial sector, it gets a high score for its depth and stability. But the big issue is how long this will continue as a high level of non-performing assets at 10 per cent and low capital adequacy ratio are chipping away at the soundness of its banking system. Further, what is not contained in the report, and can affect India's future status on this attribute, is the denouement of the trouble in which its non-banks are.

A powerful strength of the Indian system is its innovativeness in which it is ahead of most emerging economies and on a par with several developed countries. Venture capital is readily available and the growth of innovative companies is high. But here also some of the pluses are taken away by the low adoption of ICT. The current rise in adoption, with ubiquitous mobile telephony and rapidly rising data consumption, is speedy but a lot of catching up is needed.

A key shortcoming is the mixed performance on various aspects of governance. The level of corruption is average. Insolvency recovery is low, the cost and time it takes to start a business is high. The quality of land administration is very poor. Balancing this is a high level of judicial independence and an efficient legal framework. The efficiency of the legal framework in challenging regulation is high. But the police do not score very well, neither does the country on Press freedom.

The labour market scores poorly with low flexibility from insufficiently developed active labour policies. Wage flexibility is low and workers do not have much by way of rights. The participation of women in the work force is abysmal. The product market is restricted by low trade openness.

On infrastructure, India scores

well on road, rail and air transport. But the quality and availability of power is poor, though gains have been made recently on reaching power to households.

Where India also scores poorly is in several areas of social capital. Life expectancy is low, one of the shortest outside Africa and below the South Asian average. Drinking water is unsafe for most. Mean years of schooling is low.

India also needs to raise its skills level. Factories will not come to a country unless there is an abundant supply of skilled manpower, of which there is a paucity. Plus, the future prospect of having a trained labour force appears poor.

A specific set of policy prescriptions were offered earlier this year by Raghuram Rajan and Abhijit Banerjee (who won the Nobel), along with several other economists while addressing issues that also affect competitiveness. To create jobs and raise exports — both the aims served speedily by being able to attract relocating factories — the country must create a better business environment.

This is best done by learning from the experiences of different Indian states in the fields of land acquisition, industrial regulation, provision of power and logistics and environmental clearance. They feel a centre states productivity council can deliver this through special economic zones, where land, environmental clearance and transportation infrastructure are made available in a coordinated manner, so that things get going speedily.

The essence of this model is to keep learning while doing. For a good reason, the country has three layers of government — Central, state and local. For an equally good reason, they need to be masters of their domains to get the best results. And for this they need to talk to one another to evolve a consensus model at a forum like the council referred to above. The beauty of consensus is that it takes long to achieve, but once it is there progress takes place at a superior speed.

In own land a foreigner

PARBINA RASHID

T'S not easy being a 'foreigner' in one's own country. Ask ⚠ Mahommad Sanaullah, who despite fighting the Kargil War and extremists in J&K and Manipur under the banner of the Indian Army, was locked up in a detention camp in Assam meant for illegal migrants from Bangladesh and excluded from the NRC.

I have no idea what foreign 'element' the authority found in him to award him the foreigner tag.

I have been forced to wear this tag ever since I came out of my home state. Assam, purely because of my accent. As a fresh entrant at Abdullah Hall at AMU, where diction and pronunciation are as sacrosanct as the grammar of the language, I had failed to integrate myself into the Urdu-speaking crowd miserably on all counts. Even after rehearsing a simple word

like 'piyaz' 10 times before uttering it in front of the kitchen staff, I would get it all wrong. 'Bibi, aap toh bahut door desh se aayi hain na,' they would say sympathetically. Sometimes I would let them go with their belief as their sympathy would translate into an extra piece of meat or an egg.

But it was not always a happy ending. Especially, when I would try to sneak out of the hall on a working day, disguising as a day-scholar, with a headscarf and dark shades for camouflage. It would always be my accent that gave me away when the security guys stopped me at the gate to find out if I was a hosteller. And, unceremoniously, I would be sent back to my hostel. It was hurtful and humiliating.

I have come a long way since my AMU days, but the tag has more or less stayed with me, and so has the accent. During my recent trip to Germany,

when I landed in Munich two hours late, I had to rush to catch my connecting flight to Dresden which had to be rescheduled. Spotting a man who looked like an airport official, I approached him for help.

'Where are you from?' he asked. 'India,' I said.

'You can't be from India.' I was taken aback. Without saying a word, I pushed my passport towards him. Taking a look at it, he said in an accusing tone, 'You don't look like an Indian.'

Hassled and tired to the core, my first reaction was to retort, 'Should

I chant Jana Gana Mana or Bharat *Mata ki Jai*?' But knowing that my sarcasm will be lost on him, I tried to explain patiently, 'I come from the Northeastern part of India. Since we are of Mongoloid origin, we may or may not fit into the image of a typical....'

'You are an Indian all right,' he cut me sort. I was puzzled. What made him change his mind? The question mark in my eyes must have told him what I was thinking. He explained, 'Your accent. You speak like a typical Indian.'

Wow, my accent proved more potent than the passport I was holding! Finally, I had a reason to be grateful to it. For, it's not easy being a foreigner in a foreign country either!

THOUGHT FOR THE DAY

Being second is to be the first of the ones who lose.

— Ayrton Senna

ON THIS DAY...50 YEARS AGO

The Tribune.

AMBALA, THURSDAY, OCTOBER 23, 1969

SHIFT IN P.M.'S STAND ON CHANDIGARH

From Our Correspondent

NEW DELHI, October 22—Prime Minister Indira Gandhi will meet Punjab and Haryana political leaders tomorrow to discuss the Chandigarh issue, it was learnt here tonight. As reports of Mr. Darshan Singh Pheruman's deteriorating condition reached here, Mrs. Gandhi summoned Giani Zail Singh, Punjab Congress Chief, here this evening. Mr. Iqbal Singh, Union Deputy Minister for Transport and Shipping, was also present at the Mrs. Gandhi-Zail Singh talks. Meanwhile, the Prime Minister's Secretariat is getting in touch with Punjab leaders to call them to Delhi to see Mrs. Gandhi at the earliest so that she could discuss the issue with them. There seems to be a definite shift in Mrs. Gandhi's stand. Earlier, she had repeatedly announced that she would not take decision on this unless the situation calmed down. As a result of talks with Punjab and Haryana leaders a process of negotiations to settle this issue will start.

UNI adds: The Internal Affairs Committee of the Cabinet today discussed the feasibility of arriving at a decision on Chandigarh acceptable to both Punjab and Haryana. The consensus was that at the moment no solution could be devised which would satisfy both parties. Meanwhile, it was decided that the fullest help should be given to the Punjab Government to meet any emergency arising from the fast. In particular, the Centre is keen that there should be no communal clashes if anything untoward happened to Mr. Pheruman. The Committee also reviewed the situation in West Bengal and noted that the clashes had occurred in predominantly labour areas. The Committee was gratified that the situation had not deteriorated in the 24-Parganas today. The law and order situation in Assam was also discussed.

LETTERS TO THE EDITOR

Need strong Oppn leader

I am writing not to criticise any government, but in the present political scenario there is only one person who is ruling the country and the rest are just watching. After seeing the daily debates on unnecessary issues, one feels that it is simply a propaganda to divert the attention of the masses. Being youth of India, I can see that our country is in the dire need of a strong Opposition. The Congress and other parties who are not the allies of the BJP do criticise the government, but we need a leader who can match the charisma of Prime Minister Modi.

SUKRITI SHARMA, UNA

Apprehensions valid

The article 'ISI machinations can't be brushed aside' (October 22) is apt and timely. Initially, the CM of Punjab had voiced similar opinion, though not in so many words, but his voice was drubbed under politically correct pronouncements. The writer has hit the nail on its head when he mentions the deliberate 'underplay' of security perspective due to compulsions of 'politicos'. Hope all concerned must be alert to the well-reasoned apprehension, so that any misadventure on the part

of the ISI may not lead to bigger

and longer troubles for us all. **ANIRUDH DHANDA, KANSAL**

Hungry in 'New India'

Refer to the editorial 'Going hungry' (October 22); it is appalling that India has plummeted to the 102nd rank. It belies the tall and boastful claims of a resurging and emerging 'New India', marked by overall progress and prosperity. It is a matter of shame that even small countries like Bangladesh and Nepal are better than India in this regard. Poor maternal fitness, sanitation and education also exacerbate the problem. Various schemes such as PDS, midday meal and the Food Security Act have been unable to wipe out the scourge of poverty and hunger due to poor implementation.

ROSHAN LAL GOEL, LADWA

Children wasting away

Refer to 'Going hungry' (October 22); the government should attach importance to the issue on priority and come out with some concrete remedial measures. The child wasting rate is extremely high at 20.8 per cent — the highest rate of any country in the report, which is a matter of concern. The entire country is suffering. Inflated claims mean nothing.

RAJ KUMAR KAPOOR, ROPAR

Reinvent FCI

We hand out huge farmer subsidies and increase MSPs only to then infructuously store excess grains in the face of hunger and malnutrition. While this calls for an expansion of the PDS operations, the key agency FCI needs to be reinvented and its remit reworked and intra-ministerial touch points specified. It keeps carrying a huge interest burden in the range of 1.5 lakh crore besides mounting wastage. The problem of excess grain stocks with the FCI is not recent. We have not addressed this serious issue for over a decade now. In 1995, we had 180% of the stipulated storage, and in 2011 more than twice. Year 2015 was no different, and now in 2019 it is even more pronounced.

R NARAYANAN, NAVI MUMBAI **Devise better food supply**

It is unfortunate that despite being the second-largest food producer, India ranks poorly on the GHI ('Going hungry', October 22). To tackle the problem, the government should increase the budget for children's health. The problem is all the more complex because the food basket differs from region to region. It is therefore essential that we have an efficient integrated system for food production, processing, preservation and distribution.

Enhance skills

SRISHTI MATHUR, UJJAIN

Refer to 'Distress signal: share of young workers in NREG begins to rise' (October 22); skills and practical knowledge are lacking in the youth. They have degrees but still face unemployment, which leaves them only with the option of undertaking unskilled manual work. The government must take steps to resolve this issue and introduce new schemes for unemployed youth. It can start skillenhancing institutes or introduce compulsory practical courses at the school level.

Focus on teaching skills

NIKITA BHATI, RAJASTHAN

Reference to the dress code diktat at Patiala medical college; teachers should focus more on improving their own skills rather than getting distracted by what their students wear. What ultimately matters is excellence, be it of students or teachers. Such teachers need to be groomed on such sensitive issues. The public is paying a huge price on medical education.

BRIJ BHUSHAN GOYAL, LUDHIANA

Letters to the Editor, typed in double space, should not exceed the 200-word limit. These should be cogently written and can be sent by e-mail to: Letters@tribunemail.com

India needs to amend its nuclear doctrine



LT GEN HARBHAJAN SINGH (RETD) MILITARY COMMENTATOR

NDIA suffered a crushing defeat at the hands of China in the short war of October-November 1962. On October 16, 1964, China carried out its first nuclear test. This added a new dimension to the threat to India's security and provided the impetus to India for developing nuclear weapons as a means of deterring Chinese aggression. Consequently, India tested its first nuclear device on May 18, 1974.

Pakistan began the process for developing nuclear weapons in January 1972 after losing East Pakistan as a result of the 1971 war. It, perhaps, secretly tested its nuclear devices in China in the late 1970s and early 1980s. Pakistan carried out the first nuclear test openly on May 28, 1998, a few weeks after India's second nuclear test. Since then, it has made noteworthy strides in the areas of nuclear weaponisation and missiles.

Therefore, it needs to be realised that India developed nuclear weapons primarily to deter China from any military adventure across the Himalayas.

India's nuclear doctrine of the NFU (No First Use) and CMD (Credible Minimum Deterrence) was made public in August 1999. In 2003, the Cabinet Committee on Security debated the 1999 doctrine, but no changes were promulgated. However, it is not essential to publicise a nuclear doctrine.

Mere signals resulting in ambiguity can also serve the required purpose, ie information warfare.

India has developed a Nuclear Triad capability (ability to launch nuclear missiles from the air, ground and submarines) in order to survive and retaliate with nuclear weapons against a first use nuclear strike, as part of its CMD doctrine. India also has Agni missiles which have ranges covering territories much beyond China. This prevents China and Pakistan from nuclear-blackmailing India.

China is the only other nuclear nation in addition to India that professes to follow the doctrine of NFU. However, Chinese sources have made statements that their NFU commitment is not applicable to the areas which Beijing claims. Also, they have mentioned some red lines, which if crossed, would invite a nuclear attack. In this context, it is relevant to point out that China lays claims to Arunachal Pradesh and certain areas along India's border with Tibet.

Pakistan's nuclear doctrine is India-specific and stipulates deterrence by "guaranteeing an immediate massive retaliation by nuclear weapons" against a ground and air attack which crosses certain red lines. To counter India's Cold Start Doctrine, Pakistan has added the use of TNWs (Tactical Nuclear Weapons) against Indian troops.

India has set up an elaborate nuclear command and control organisation with alternative command post, communications and Triad to absorb the first strike. This makes the Indian doctrine quite potent.

However, our nuclear doctrine suffers from some serious infirmities. The current nuclear doctrine only



STRATEGY: To deter China, India needs to include the use of TNWs.

Our nuclear doctrine suffers from serious infirmities. It only deals with a nuclear conflict scenario. It does not get meshed with territorial security, which is the main Indian concern vis-a-vis China and due to which India went nuclear. India's strategy has to be to deter/dissuade China from embarking on any large-scale offensive.

deals with a nuclear conflict scenario. It does not get meshed with the territorial security of the nation, which is the main Indian concern vis-a-vis China and due to which India went nuclear. China has become much stronger in conventional forces. India's strategy has to be to deter/dissuade China from embarking on any large-scale offensive. This cannot be achieved by increasing ground and air forces. Also, due to the strategic nexus between China and Pakistan, India will have to keep considerable forces on its western front.

The Indian strategy to deter China must, therefore, include using our comprehensive military potential, including the use of tactical nuclear weapons (TNWs).

Escalation leading to MAD scenario

■India's doctrine envisages using 'massive nuclear retaliation' in case an adversary resorts to first use of any kind of nuclear device, even a TNW.

■It implies that if Pakistan uses a subkiloton nuclear weapon to wipe out an Indian offensive Army division/brigade in the desert of Rajasthan, India would immediately drop a number of strategic nuclear bombs on Pakistan cities and strategic targets. And it is implicit that in return, Pakistan would nuke Delhi, Mumbai, Jodhpur, Chandigarh etc.

■Whatever the doctrine, in practice, the moment Indian troops are attacked by a TNW, there would be intense diplomatic pressure on India to not retaliate with nuclear weapons. Certainly not with strategic weapons and escalate the situation. The Indian leadership is most likely to succumb to such international pressure. A graduated nuclear response with TNWs is likely to be tolerated, though.

■Also, in such a scenario, will the Indian political leadership have the courage to bear the consequences of creating a situation for MAD (Mutual Assured Destruction)? This is highly doubtful.

■In view of the above, such a theoretical nuclear doctrine, which envisages raising the stakes from a tactical to a strategic level suddenly, seems "less

of deterrence and more of pretence." ■The adversary's leadership is unlikely to bite it and hence it does not have the required deterrence value.

During the Cold War, the Warsaw Pact Forces had a marked superiority in conventional forces over NATO and, hence, were expected to overrun vital areas in Europe in a short time. America, therefore, deployed thousands of TNWs with a view to deter the superior Soviet-led conventional forces.

In due course, it was realised that

the use of TNWs in populated areas would result in colossal damage to the European population and so, they were discarded. As far as India is concerned, our area along the border with Tibet, by and large, has very little habitation and the above-mentioned constraint for the use of TNWs there and in the deserts of Rajasthan is, therefore, not relevant.

Keeping in view the superiority of China in conventional forces, the use of TNWs in our own territory, say in Tawang, Walong or Chushul, against any offensive Chinese forces is a credible and cost-effective option. India cannot mount any worthwhile conventional counter-offensive due to constraints posed by the very high altitude terrain and long lines of communications. Feeling gung-ho as a result of exercises is a different kettle of fish as compared to the actual shooting war.

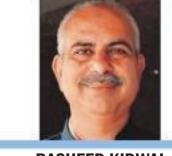
Keeping in view the threat of TNWs from Pakistan, the Indian nuclear doctrine should state that their first use by an adversary will be responded to in kind and with much greater intensity.

As far as diplomacy and world opinion are concerned, the answer is: there is nothing offensive in the proposed doctrine. It is a defensive doctrine to safeguard India's territorial integrity. The TNWs are planned to be used only in our own territory.

With such a doctrine, India can certainly deter/dissuade China and Pakistan and reduce some Army formations and costly air assets. Thus, it can devote greater financial resources towards economic development and alleviating poverty.

In the context of wars that India is likely to get involved in, talking about MAD seems a mad idea.

Rampaging BJP keeps old ally on tenterhooks



RASHEED KIDWAI SENIOR JOURNALIST & AUTHOR

Political and inter-personal equations have undergone a sea change since 2014, the year that marked the emergence of Modi-Shah jodi. A section of the Sena thinks the BJP's rise and reach has the potential of swallowing the Sena. In the context of BJP's spectacular performance, the Sena seems to be running out of time to retain its regional identity and primacy in Maharashtra politics.

OING by exit poll survey indicators, the outcome of the Maharashtra and 2019 Haryana Assembly polls appears to be another set of bad news for Congress. The make-or-mar moment for the Congress has entered its most decisive phase. Party's interim chief Sonia Gandhi was to address nine public meetings in Maharashtra, but she failed to turn up in any. In Haryana, too, her rally at Mahendragarh was abruptly called off. For the first time since the Sitaram Kesri era, the Congress faced a situation where its chief did not step out of the house during the poll campaign.

The silent support base of the grand old party, as per exit poll agencies, across Maharashtra, is evaporating. In the Mumbai metropolis alone, among Dalits, Christians, Muslims, North and South Indian votes, only Muslims and a smaller slice of Christian voters seem to have backed the Congress. Senior Congress leaders say they were stunned that in party strongholds like Nanded and Karad, traditional party supporters moved to the BJP in droves on Prime Minister Narendra Modi's thrust on muscular nationalism and the BJP's plank of cultural nationalism.

While the Congress is in urgent need of new leadership, organisational revamp and accountability at all levels of party hierarchy, party leaders at various levels of hierarchy are unable to force the issue. The million-dollar question is whether Rahul Gandhi would accept the mantle of leadership within a short span of quitting the high office. After October 24, it will not be surprising to hear voic-



THE DIE IS CAST: The exit polls have spelt bad news for the Congress.

es, appeals, Twitter calls asking for 'Rahul lao'. Bizarre as it may sound, many think Rahul's return at the Congress helm of affairs may bring back disgruntled leaders like Ashok Tanwar in Haryana and Sanjay Nirupam in Maharashtra back to the party fold.

Interestingly, a section of the Congress feels the actual verdict on October 24 may have a lot more in store in Maharashtra while accepting the exit poll findings that the BJP and ally Shiv Sena would do well in the state.

Conventional wisdom points at the Sena abiding by the 'coalition dharma', accepting junior-partner status and letting young Aaditya Thackeray learn lessons of governance under Devendra Fadnavis. However, there is another side of the Sena which may turn euphoric, a tad more ambitious if the News 18-

EASY

IPSOS projection of the Sena crossing the 100-seat mark becomes a reality.

In such a scenario, the vanquished

parties — the Nationalist Congress Party and Congress — would desperately offer the Sena unconditional support in exchange for dumping its senior partner at any point during the new innings. The Sena is known to bargain hard when it comes to sharing ministerial berths and portfolios. It would, therefore, be interesting how Fadnavis, Amit Shah and BJP working president JP Nadda negotiate the phase. The Sena has been the BJP's longest and ideologically compatible ally. But of late, it has been acting as strident opposition to the BJP both inside and outside Maharashtra. Some of the editorials and headlines in the Saamana mouthpiece have been far more critical of the BJP, Modi and Fad-

There is a reason for it. When the BJP and the Sena had joined hands in 1989, the broad understanding between LK Advani and Bal Thackeray was that the BJP would get more seats in the Lok Sabha elections and the Sena would contest more seats in the state assembly polls. But since 2009, the BJP has been winning more seats than the Sena [in $2014, they \ contested \ separately. \ The \ BJP$ won 122 and Sena 63 seats and formed the government together]. The political and inter-personal equa-

navis than any left-of-centre publication.

tions have undergone a sea change since 2014 that marked the emergence of Narendra Modi-Amit Shah jodi. A section of the Sena thinks the BJP's rise and reach has a potential of swallowing the Sena. Some opinion and exit poll surveys for the 2019 Assembly polls predict the BJP netting anything between 75 and 90 per cent seats it is contesting as part of the alliance. In the context of the BJP's spectacular performance, the Sena seems to be running out of time to keep its regional identity and primacy in Maharashtra politics.

All eyes would be on the young Aaditya Thackeray: whether he would indulge in the more confrontational and adventurous course or put his head down to learn the ropes of governance. A position in the government has the potential to prepare him for future challenges but high expectations from the cadre and past legacy, illusion of grandeur or a combination of these factors may trigger a new situation. Both the NCP and the Congress are eagerly looking for it.

Incidentally, in its early years, the Sena was derogatorily referred to as the 'Vasant Sena' after legendary Congress leaders Vasantrao Naik and Vasantdada Patil provided the Sena credibility by accepting its agenda of approving 80 per cent employment of locals in business establishments. Both Naik and Patil had detested the dominance of Gujarati, Parsi, Sindhi and Bohra Muslim enterprises in Mumbai and Maharashtra. Bal Thackeray played his role as the Congress' 'hitman' till he became a cult figure on his own.

One such election where the Shiv Sena helped out the Congress was the 1967 Lok Sabha poll. Congress stalwart VK Krishna Menon had been denied party ticket and was contesting as an independent candidate from the Bombay North East constituency and campaigning on his proximity to Jawaharlal Nehru. His election campaign posters read 'Nehru's vision, Menon's mission'and showed Menon within a Nehru silhouette. Indira Gandhi, who was fighting to isolate Menon, instructed her key aides to get the former Defence Minister defeated at 'all costs'. Thackeray, Shiv Sena chief, and Marmik campaigned for Congress nominee SG Barve. A day before voting, Marmik published a cartoon that showed Menon with two foreign girls, his hands around their shoulders. The caption insinuated that they were why Menon wanted to be Defence Minister. Barve won the election.

YESTERDAY'S SOLUTION

Across: 1 Dixie, 8 Maritime, 9 Comfy, 10 Badinage, 11 Dante, 12 Sad, 16 Beirut, 17 Amazon, 18 Yam, 23 Stray, 24 New World, 25 Break, 26 Old guard, 27 Clash. **Down:** 2 Idolater, 3 In future, 4 Banana, 5 Fit in, 6 Midas, 7 Ceres, 12 Sty, 13 Dam, 14 Pastoral, 15 Nowadays, 19 Allure, 20 Enjoy, 21 Swede, 22 Bonus. epaper.tribuneindia.com

ACROSS 1 In the direction of (7)

5 Cranium (5)

8 Exaggeration (13)

9 Fine net fabric (5)

10 Single eyeglass (7) 11 Layers (6)

12 Flexible (6) 15 Shake (7)

17 General meaning (5)

19 Furtive (4-3-6) 20 Pitch suddenly (5)

DOWN

21 To exhibit (7)

1 A freshwater fish (5)

2 Shrewd operator (7-6) 3 To honour (7)

4 Ingratiatingly polite (6)

5 Forbidding in

appearance (5)

6 Quite ordinary (13)

7 Matter of pure chance (7)

11 Bag on shoulder strap (7) 13 Very ugly (7)

14 Was inclined (6)

16 Bumptious (5) 18 Too long delayed (5)

8 5 9 6 8 5 9 6 3

OCTOBER 23, 2019, WEDNESDAY ■ Vikrami Samvat 2076 ■ Shaka Samvat 1941 ■ ■ Kartik Shaka 1 7

■ Kartik Parvishte 1441 ■ Hijari

■ Krishan Paksh Tithi 10, up to 1.09 am ■ Shubh Yoga up to 4.57 pm ■ Aashle Nakshatra up to 3.13 pm

■ Moon enters Leo sign 3.13 pm.

VESTERDAY'S SOLUTION

5	4	2	9	1	7	8	3	6
1	9	7	3	6	8	2	5	4
6	3	8	4	2	5	7	9	1
3	2	9	6	8	1	5	4	7
8	7	1	5	3	4	6	2	9
4	6	5	7	9	2	1	8	3
2	5	3	1	4	6	9	7	8
7	1	4	8	5	9	3	6	2

WEDNESDAY 17:43 HRS THURSDAY 06:31 HRS CITY MIN MAX 31 16 0 Chandigarh 32 16 0 New Delhi PUNJAB 30 **Amritsar** 16 31 14 Bathinda 0 Jalandhar 30 15 0 31 17 Ludhiana 0 HARYANA 32 0 15 Bhiwani 0 32 15 Hisar 0 31 16 Sirsa HIMACHAL PRADESH 14 Dharamsala 22 04 0 Manali 18 09 Shimla 19 JAMMU & KASHMIR 28 Jammu 16 Leh Srinagar UTTARAKHAND Dehradun 14 0

21

Mussoorie

TEMPERATURE IN ^OC

10

0

When retail met media

What does the entry of non-media firms like Flipkart into video and media firms like Times Internet into transactions mean?



MEDIASCOPE

VANITA KOHLI-KHANDEKAR

ast week Flipkart, an online retailer, launched a streaming video service. Backbenchers, its first original series that goes live this month will be hosted by filmmaker Farah Khan. She will be bantering with some of India's top celebrities. Guneet Monga of Sikhva Entertainment comes on board as a creator and curator of short stories. More than half the content on Flipkart video will be from tier-II and tier-III towns. The idea is to drive internet users not familiar with online shopping to Flipkart, said a company spokesperson at the launch event.

The move is interesting for three

One, Flipkart that reaches 160 million people is majority owned by the \$515 billion American retail giant Walmart Inc. On the other hand, another US-based firm — the \$233 billion Amazon, one of the largest online retailers in the world, began a video service in 2007 that eventually evolved into Amazon Prime Video. It has invested millions on original shows such as The Family Man or The Marvelous Mrs Maisel. Amazon Prime Video came to India in 2016. So two of the world's largest online and offline retail firms have made significant streaming video foravs into India.

Two, Flipkart's video service comes soon after one from food aggregator Zomato. Earlier in September, Zomato began offering 18 originals such as Food and You with Sanjeev Kapoor or Dude Where's the Food with Jordindian, among others. Then there are the food shows it has licensed and Sneak Peek. a series on restaurants it launched in August last year. The originals will be available only in India, where Zomato operates in 500 cities. The rest of the videos can be streamed in all the 24 countries to the 70 million users it reaches. The idea is to drive penetration and get people to spend more time on Zomato. Last year Ola, a cab-sharing app, began offering Ola Play, an in-cab video service for a small extra charge.

Three, and there is irony in this, this wave of non-media companies getting into video comes at a time when media companies across the world are getting into all sorts of "transaction services." These could be direct online retail or activities that helps direct traffic to sites where users spend money. This in turn

generates a commission or "affiliate revenues." For instance, Times Internet, one of the largest digital publishers in India, gets just over a third of its revenues from services that push affiliate revenues, such as Dineout, ETMoney or GradeUp.

Where would a video offering from Flipkart or Zomato sit in a market swimming with multi-million dollar

There are more than 35 apps competing for the attention of around 600 million broadband users in the estimated ₹8.000 crore online video market in India. Google's YouTube is the largest. reaching over 265 million Indians every month with revenues of over ₹2,000 crore in 2018. There is Hotstar from Disney, Voot from Viacom18 and Netflix among others.

These are regular media firms that make advertising or subscription revenues from serving licensed and original content. "We don't want to be Netflix or YouTube. We are a vertical content creator, so our budgets are limited. The idea is to aid people in their dining-out or dining-in decisions. It is about transaction and search based video rather than a full movie," says Durga Raghunath, senior vice-presi-

However, globally, with the exception of Amazon, the record of nonmedia firms that try their hand at video is pretty dismal. Walmart, MediaMarkt, Carrefour, Sainsbury's, among some of the world's biggest retailers have tried to use video. "Most of these services were TVOD (transaction video-ondemand) focused and not particularly successful. Most closed after a few years," says Tony Gunnarsson, principal analyst, Pay-TV and OTT Video at London-based research and consulting firm Ovum. Eventually, the contradiction between trying to become a creative firm trying to get audiences simply doesn't sit well with the pressure of getting that video to generate so many million in sales.

The reverse is not yet as true. NDTV Convergence, NDTV's successful digital arm took a serious shot at specialised retail in fashion but it hasn't amounted to much. A bulk of Times Internet's revenues, growth and profits comes from brands such as The Times of India or Gaana. However, affiliate revenues from a host of services are growing too.

Wait then for more experiments from media and non-media players before a pattern emerges.

2012**

512.06

190.9

108.70

729.21

217.49

511.72

2019***

535.78

192.49

109.85

851.81

317.07

534.74

Twitter: @vanitakohlik

2007*

199.08

105.34

Animal spirits in the livestock census

The latest livestock census points to encouraging trends in dairying and poultry rearing

ANALYSIS BEHIND

SANJEEB MUKHERJEE

The 20th livestock census released a few days ago throws up some interesting findings that could alter fundamentally policy-makers' approach to the country's animal husbandry industry. This was the first livestock census

that used IT in a big way: Data was collated from tablet computers used by the over 80,000 field staff,

which explains why these provisional findings are available within a year from the start of the census on October 18, the fastest in recent times. Till the 19th census, provisional results were declared more than a year and a half after the exercise began and the provisional data was often inaccurate and subject to considerable alterations. This

time, government officials say, the final data will be released "very quickly".

The livestock census covers all domesticated animals. Preliminary data augurs well for the the country's dairy industry by reinforcing India's position as the world's largest milk producer. Although the number of overall cattle (male and female: crossbred and indigenous) has risen marginally after recording a fall in the 19th census of 2012, the female cattle population in both the segments has

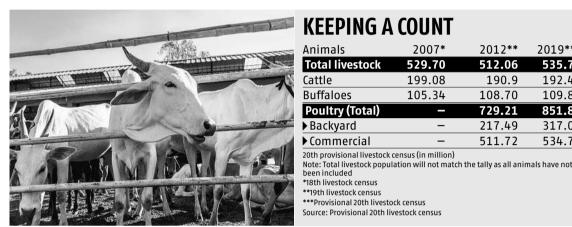
shown a steady increase.

Overall, the total female cattle population rose 18 per cent between 2012 and 2019. More significantly, however. is the relatively faster growth of 39 per cent for the high-yielding crossbred variety against 10 per cent for relatively low-yielding indigenous female cattle. This is not a new trend — in fact, the census confirmed what dairying experts knew.

But the increase in the number of crossbred female cattle is of special significance because these animals can produce the same quantity of milk all year round, which helps smooth the typical seasonal ups and downs in milk supply. "The rise in crossbred female animals along with increase in the number of indigenous female cattle population signifies that dairy firms will be

able to reduce their reliance on skimmed milk powder during the lean summer months because they will have access to a constant supply of liquid milk," said R S Khanna, a noted dairy and livestock expert.

In terms of the buffalo population. the number of females grew 8.6 per cent between 2012 and 2019, whereas the number of male buffalos declined 42.35 per cent. Buffalos account for 20.5 per cent of the country's total



In 2018-19, crossbred animals accounted for almost 28 per cent of India's annual milk production of around 188 million tonnes, while indigenous animals contributed 18 per cent; buffalos accounted for the highest share at 49 per cent.

The rise in high-yielding female crossbred cattle is important because it reduces the pressure on land and related resources and significantly improves dairying economics. On an average, crossbred cattle yield 6-8 litres per animal and indigenous or desi breeds 3-4 litres. This development, however, runs somewhat contrary to the ruling National Democratic Alliance's ideological position of reversing the trend of falling indigenous cattle numbers (both male and female). The Rashtriya Gokul Mission, launched in 2014, spent ₹1056.82 crore between 2016-17 and 2018-19, principally on establishing indigenous cattle breeding centres, special tagging of indigenous cattle and so on. This programme succeeded in achieving a marginal rise in female indigenous cattle numbers but not in the male of the species.

Another interesting census finding is the sharp decline in the number of horses, mules, donkeys and camels, The drop in the number clearly shows their reducing importance in transportation in small towns for short distances. In Jammu & Kashmir, for instance, the horse and pony population has dropped 56 per cent between 2012 and 2019, which can be attributed to the increasing reliance on overhead cable cars for transport during religious pilgrimages.

A big revelation of the 20th livestock census was the sharp increase in the number of backyard poultry birds in comparison to the number of birds from commercial firms. These include, fowls, ducks, emu, turkeys and quail and other birds. The data shows that the number of backyard poultry birds rose a staggering 46 per cent between 2012 and 2019. The number of poultry birds from commercial farms, which are typically located near urban areas, rose 4.5 per cent during the same period.

Though the contribution of backyard poultry in India's total poultry population is still around 40 per cent the majority of the birds still come from commercial farms — the sharp growth in its population reflects an interesting development. Backyard poultry is practised mostly by small farmers, and the birds they rear are consumed by the household: very small quantities are commercially sold. A rise in their number could have a favourable impact on India's malnutrition and act as an additional source of income for small, landless farmers.

Rickey Thaper, treasurer of the Poultry Federation of India, says the increase in backyard poultry birds is a direct result of steps several state governments, especially in the east, took to distribute chickens and fowl among the landless, poor growers.

CHINESE WHISPERS

Study material

The Parliamentary Standing Committee on Finance, led by Jayant Sinha, has selected a bouquet of subjects it will study. Among the 15 selected, the committee will study inflation-targeting guidelines and monetary transmission, the quality of supervision and oversight of financial institutions, the implementation of the Insolvency and Bankruptcy Code, and "achieving \$10 trillion GDP - a long-term prospect for the Indian economy". Sinha was minister of state for finance as well as civil aviation in the first Narendra Modi government.

Sulking Scindia



Congress General Secretary **Jyotiraditya** Scindia (pictured) has once again attacked the Madhva Pradesh government,

run by the Congress. In a recent move, he took on the government for allegedly letting off people, arrested for involvement in spurious food trade, without sufficient opprobrium. Speaking at an event where health minister Tulsi Silawat was present, Scindia indicated the cases against the wrongdoers were closed even without Silawat's knowledge. Scindia has been taking potshots at the state government ever since he was ignored for chief ministership and because of the delay in replacing Kamal Nath by him as Madhya **Pradesh Congress Committee** president. A few days ago, he had criticised the government for supposedly failing to fulfil the promise of farm loan waiver.

Monitoring agreements



Cabinet Secretary Rajiv Gauba (pictured) last week wrote to all Union secretaries about the need for 'continuous and effective monitoring" of Memoranda of Understanding, or

MoUs, signed by their ministries or departments with foreign governments and agencies on cooperation in various fields. In a letter on October 15, Gauba stated such monitoring was needed "so that their potential may be tapped optimally". He observed that "many MoUs may have lost their relevance, and obsolete MoUs may be discontinued". He said Action Taken Reports on decisions of the Cabinet or the Cabinet Committee on Economic Affairs on MoUs/agreements were often not updated regularly on the e-SamikSha portal of the Cabinet Secretariat. He asked secretaries to order a "structured review" of all MoUs/agreements.

Getting real about real estate

As of now, foreign investors appear to be the only viable source of long-term funds for the sector



DIVA JAIN

he failure of PMC Bank has once again thrust attention on the ailing residential real estate market in India. While there was corruption involved in PMC Bank's downfall, its demise was essentially sparked by loans to a real estate firm that could not pay it back. The flagging residential real estate market is a cause for grave concern for the economy as a whole and the financial sector in particular. Former RBI chief, Raghuram Rajan has also recently remarked on the broad shadow the real estate sector casts on the entire economy and the risks to the banking sector. More worryingly, historically, most financial crises have been driven by a crash in the real estate market that first contaminates the financial system which then throws a spanner in the entire economy. Before the sub-prime crisis in America, the world has seen several real estate-led contagions devastate large economies. The real estate sector played a starring role in the savings and loan crisis in America, the Japanese financial crisis and the Swedish banking crisis. India's real estate poses a similar risk to the stability of the economy. The genesis of the problem lies in the uniquely "irregular" business model of residential real estate developers in India and the disruptions

caused to it in the last few years. Traditionally, real estate developers

have followed a model of land speculation where the objective was to acquire land and develop it in small increments to maximise profits from the increase in the value of the underlying land. Like all speculative models it was based on cheap leverage. Developers had two main sources of funding to leverage their exposure to land prices. "Investors" with unaccounted for wealth and pre-sales to end customers or real estate speculators. On a risk adjusted basis, both these sources of funding were cheap. "Investors" with unaccounted for wealth needed avenues to deploy their cash and were willing to accept a below-market rate. Pre-sales to end users or speculators generated "float" or interest-free advances which could be deployed to buy more land or fund development of the project. Access to cheap leverage led developers to create large banks of inventory to maximise their exposure to the real estate market. The weakness of this model was that

it was critically dependent on real estate prices going up. As long as the prices increased at a rate that was higher than the cost of holding inventory, a developer would make a tidy profit from his leveraged exposure to real estate prices. Buoyant prices were also critical to attract speculators who were willing to participate in pre-sales or invest in housing stock purely for capital gain.

This model has suffered a series of shocks in the recent years. With the implementation of RERA, developers no longer have easy access to "float" money. Demonetisation and attendant measures initiated by the government against black money dealt a body blow to the risk appetite of "investors" with unaccounted for wealth. Developers now turned to NBFCs and shadow lenders for funding. With the liquidity

drying up for NBFCs and house prices stagnant at best with no sign of revival in demand, developers now face the deep end of the sea with massive unsold inventory.

It is this unsold housing stock that threatens the economy and the financial sector. By some estimates, India's unsold housing stock is as high as 5 per cent of the GDP. A chaotic liquidation of this stock can lead to heavy losses for the shadow lenders which in turn can contaminate the banking system leading to a full-blown financial crisis. Unfortunately, a reactive approach (which this government seems to favour for most issues) will only compound the problem. If the government intervenes after the liquidation of developers and their stock of unsold housing has begun to impact the financial sector, it will risk contagion as well as moral hazard where both responsible and irresponsible builders/lenders will benefit from intervention. Moreover, the costs of such a "bailout" are likely to be high and burdensome on an exchequer which is already struggling to meet its deficit targets.

There are several proactive measures that the government can initiate to minimise the probability of such a scenario. They are market-based, largely revenueneutral and are likely to allow for an orderly assimilation of unsold inventory into the market thereby minimising the risk of contagion. A liberal FDI regime for real estate where foreign investors can invest up to 100 per cent in completed projects will greatly help resolve the unsold inventory problem. This will allow foreign investors to take exposure to Indian housing demand and also provide avenues to developers and shadow lenders to de-risk and deleverage their balance sheets, thereby minimising contagion risk.

This will also have several positive

externalities for the sector and the economy. One, foreign investors will only invest in projects with potential for returns thereby weeding out unviable projects and developers from the market (no moral hazard). Second, the public exchequer will be spared the burden of bearing the folly of shadow lenders and developers. Last, foreign funds will look to maximise yields by renting out these residential properties. This will lead to the development of an organised and professionally-managed rental market for housing that will be a boon to consumers and developers alike.

The government can supplement this by several other measures designed to boost yields and provide exit opportunities for such funds. This could include tax exemptions on rental income and simplified listing norms for housing REITS. This model has enjoyed considerable success in the United States where several funds such as American Home and Silver Bay mopped up large chunks of the housing stock in the aftermath of the sub-prime crisis and subsequently listed as REITS.

Notwithstanding the greed and avarice that has led to the current state of the real estate sector, it remains a valuable source of employment and growth and poses great risk to the financial system. The sector needs to come to terms with the structural changes in the regulatory and funding framework and emerge as a strong contributor to growth. For this, it needs liberal doses of "patient capital" which is in shorty supply domestically. As of now, foreign investors are the only viable source of long-term funds for the sector. The government needs to realise these facts and get real about real estate.

The author is a "probabilist" who researches and writes on behavioral finance and

LETTERS

Time to shift gears

This refers to "Running for cover" (October 22). This is the appropriate time to consider both a higher deposit insurance cover as well as a risk-based premium for deposit insurance. First, the present deposit insurance cover is too little. It needs to be hiked to Rs10 lakh. Second. risk-based premium should be introduced, based on supervisory ratings for banks. In the case of foreign banks, the Reserve Bank of India should use its own ratings as well as obtain home country ratings through the mechanism of supervisory colleges. The ratings should be carefully worked out based both on on-site supervisory examination, off-site monitoring and market intelligence.

Third, more transparency should be introduced. The depositors need to know the risks involved in putting their savings as deposits in a bank that offers higher returns. The principle of risk returns needs to be fairly well communicated. One of the ways of doing so would be to make it mandatory for the depositors to pay a small part of the cost of premium for the enhanced deposit insurance cover. The time has come for cross-subsidisation of deposit insurance cover to end. Financially weak and poorly managed banks need to pay more premium. There should be a perceptible shift from the present policy of opaqueness in strengths and weaknesses of banking entities to greater transparency and communication of

the risk-return principle. Arun Pasricha New Delhi

A masterstroke

This refers to "Bargain hard but go for RCEP deal" (October 22). If the authorities let the rupee slide to find its real level, it would be good for everyone all round and also effectively take care of the anxieties arising out of the possible dumping of items under the Regional Comprehensive Economic Partnership that could destabilise local producers. The higher import costs in rupee terms for oil etc could be managed by lowering tariffs on those with. if any, minimal revenue loss to the exchequer. Exports would get more profitable and hence grow faster and for travellers, this could provide a damper too. For those invested in the stock market here, their returns to be worthwhile would need higher prices for stocks providing them buoyancy there too. Or is this a pipe dream with

severe unintended consequences? We would, in the long run, benefit from the free trade agreement and cut down transit time, paperwork etc and improve the ease of doing business — all in one stroke.

Asit Desai Mumbai

Letters can be mailed, faxed or e-mailed to: The Editor, Business Standard Nehru House, 4 Bahadur Shah Zafar Marg New Delhi 110 002 Fax: (011) 23720201

E-mail: letters@bsmail.in All letters must have a postal address and telephone number



MUMBAI | WEDNESDAY, 23 OCTOBER 2019

The pension deficit

The govt should release statutory dues to the EPFO

he Employees' Provident Fund Organisation (EPFO) is reportedly considering giving its members an option to start drawing their pension when they turn 60 rather than 58, which is the case now. Incentives such as additional bonus may be offered to those who agree to postpone the withdrawal. On the face of it, the idea makes sense because most pension funds start payment once the investor turns 60. An additional two-year window will help the beneficiary grow her or his pension kitty.

The problem, however, is the reason behind the EPFO's move. As recently reported by this newspaper, the government is reneging on its commitment to the EPFO, and the accumulated dues are now worth over ₹9,100 crore. Employees in the private sector contribute 12 per cent of their basic salary to the EPF and the employer makes a matching contribution. Further, from the employer's contribution, 8.33 per cent goes to the Employees' Pension Scheme (up to a salary ceiling of ₹15,000) and the government contributes an additional 1.16 per cent of that. There are about 40 million active accounts in the pension scheme. The government in 2014 decided to increase the minimum monthly pension to ₹1,000 for all subscribers to the scheme and provide about ₹800 crore per year for this purpose. The EPFO on its own was not in a position to implement this. However, funds are due on this account as well.

What is intriguing is that part of the dues are pending since 1995-96, the year the Employees' Pension Scheme was started. This is a good indicator of how government finances are managed in India. The government tends to postpone expenditure to the extent possible and this is not restricted to one particular area. This practice must end because it doesn't help achieve anything. On the contrary, it can end up increasing the eventual liability for taxpayers. At a broader level, as has been argued on these pages before, the government should work with a more realistic assumption of both revenue and expenditure to improve transparency. Presenting a clear picture of the fiscal situation will also help the government manage its finances in a better manner and allow it to make the required adjustments.

Therefore, in the present context, the government would be well advised to release the funds to the EPFO. The pension fund is reported to be in deficit. Besides, the government and the EPFO should also prepare for the future. The subscriber base of EPFO schemes will increase with rising workforce and formalisation of the Indian economy. This means that the government's liability in terms of contribution to the pension scheme will also increase over time. It may require adjustment in expenditure so that the government is able to meet its commitment in time. Further, the EPFO would need to keep the interest rate on the provident fund more flexible, depending on returns generated without taking excessive risk. India doesn't have a robust social security system and, thus, it is important to protect and expand the institutional mechanism in place.

Economics of livestock

Utility value determines choice of animals

■ he futility of the government's controversial cow protection policies is evident from the 20th livestock census (2019) data, which was released last week. Despite setting up the Gokul Mission for the preservation and promotion of indigenous cattle breeds and curbs on the movement and trade of cows, and vigilantism by self-appointed cow protectors, cattle-keepers continue to prefer cross-bred cows and buffaloes over desi cows. While the population of exotic and cross-bred cows has surged by nearly 27 per cent since the last livestock census in 2012, that of the indigenous and non-descript cattle has dipped by 6 per cent. The buffalo count has also risen, even if only marginally.

Significantly, this trend is conspicuous in Uttar Pradesh, which has recorded the largest number of cases of vigilantism and lynching. The state government is also directly involved in the cow conservation campaign. All district authorities in Uttar Pradesh have been asked to build goshalas (cow shelters) to keep and feed cattle at government expense. A one-rupee cess has been imposed on every liquor bottle to raise funds for this purpose. Yet, the state's cattle population has declined by nearly 4 per cent, while the buffalo count has risen by about 8 per cent. Worse still, the closing down of many old slaughter houses and preventing opening of new ones have resulted in a decline in the number of goats and sheep as well. This bodes ill for the export of mutton from the country's leading meat-exporting state.

Stray cattle are not enumerated in the livestock census. But anecdotal evidence suggests a sharp increase in their numbers as a result of the ban on the movement and trade of cows. While earlier the old and unproductive cows used to be disposed of in the cattle bazaars, these are now let loose to roam about in the countryside, damaging crop fields and forests and competing with other livestock for fodder and feed resources. Farm organisations from all over the country are demanding an urgent solution to this menace.

The livestock census also shows that the population of several useful but low milk- or non-milk-yielding domesticated animals is dwindling rapidly. These include equines and bovines like horses, ponies, mules, donkeys, camels, and yak. No doubt, these animals cumulatively constitute only about 0.23 per cent of the country's vast livestock wealth, but these are useful in their own respect, with each one having its own unique qualities. The most dramatic fall is in the number of donkeys (61 per cent) and mules (57 per cent). If not protected, these animals may vanish in near future.

Clearly, the livestock-keepers' choice of the animals and their breeds is guided more by their utility rather than the government's diktat. That explains why the population of major milch animals is steady or on the rise while that of the draught animals, which are no longer in much demand due to the availability of mechanical alternatives, is plummeting. The best way to popularise the pure-bred indigenous cows would be to boost their inherent milk yield through selective breeding without altering their typical genetic makeup, which is adapted to local conditions. The policies concerning the movement and marketing of cows also need to be revisited for the benefit of the cattle owners and the overall livestock economy.

ILLUSTRATION - DINAY CINHA



The battle of the fading hegemons

The outcome of the China-US struggle is far from inevitable, because the powers of both the aspirant and the incumbent are eroding

ARVIND SUBRAMANIAN

lmost a decade ago, China bulls like Martin Jacques and I predicted the rise of the People's Republic at the expense of a declining United States. Today, with the two superpowers unabashedly jostling for hegemony — their trade war being just one sign of this — it is time for a fresh assessment.

It is tempting to view the US-China rivalry as just another superpower transition in a long line going back to the classical shift of power from Athens to Sparta. But this case is different.

Traditionally, a strong rising power has challenged a weakening incumbent, making the outcome preordained. The only question was whether the transition would be peaceful or violent.

This question also applies to the US-China struggle. But the outcome is far from inevitable, because the powers of both the aspirant and the incumbent are eroding — albeit in different ways.

Let's start with the more obvious case of America. Previous predictions of US decline were based on unfavourable domestic economic and social trends such as slowing productivity growth, declining social mobility, and worsening income inequality.

In recent years, however, America has faced the additional problem of a precipitous decline in its soft power, which Joseph Nye defined as a country's ability to get others to want what it wants. Today. that soft-power currency, more valuable than the dollar itself as a source of US hegemony, has been debased beyond recognition. US global leadership

is now associated with disastrous wars, repudiation of the collective commitment to address climate change, sabotage of the global trading system, and unravelling international security arrangements.

In addition, America has damaged its own political institutions. It currently has an erratic and unbalanced president, a gerrymandered Congress, a politicised Supreme Court, and a system of rulemaking rigged by the elite. Over the past century, US institutions often inspired awe and invited emu-

lation in much of the world. Now, they have become an object of mockery, while the 2008 global financial crisis similarly tarnished the American model of financedriven, winner-take-all capitalism. Moreover, whoever wins the 2020

presidential election will find it hard to restore the lustre of US political and economic institutions, owing to America's deep polarisation and entrenchment rather than attenuation of adverse economic trends. This raises increasing doubts about America's ability to project its power externally.

What about China? If the Chinese economy remains on track, it will challenge US economic supremacy in the medium term. However, the risks of a Chinese economic derailment have increased, as domestic debt has climbed to vertiginous and unsustainable levels while export opportunities have shrunk.

Perhaps most worryingly, Chinese President Xi Jinping has — bizarrely — turned away from the private sector-led growth model that served as the country's transformational golden goose for over four decades. As a result, China's economic prospects seem far less bright than they did a few years ago.

Because China is an undemocratic and closed society, its hegemonic rise has always been hobbled by a lack of soft power. In an attempt to rectify that deficiency, China launched the Belt and Road Initiative (BRI) to promote the international transfer of its impressive expertise in building infrastructure effectively and expeditiously.

At the same time, China established the Asian Infrastructure Investment Bank to challenge international financial institutions that it (and many other emerging powers) regards as increasingly discredited by outdated governance mechanisms. As if to reinforce that view, the US and Europe have yet again asserted their monopoly on control of the World Bank and International Monetary Fund, respectively, through an undemocratic process that was established 75 years ago. Although there have been no formal objections to the recent changes of leadership at both institutions, this has not gone unnoticed in the rest of the world.

Tragically, however, all of China's accumulation of soft power is being fatally undermined by its political and strategic turn under Xi. The cult of personality has returned, anti-corruption campaigns often target political opponents, and Chinese actions in Hong Kong and Xinjiang reek of political repression.

Even the BRI risks turning sour as participating governments struggle under the weight of huge Chinese loans. In Gabriel Garcia Marquez's magical realist novel The Autumn of the Patriarch, the defaulting Caribbean dictator repays his "Gringo" creditors by giving up the sea, piece by emeraldgreen piece. In the real world, acquiring land, natural resources, and sea lanes could prove China's undoing as a debt collector.

In short, in the current struggle for global preeminence, China is depleting its accumulation of soft power, while America is as well — and losing its economic strength in the process.

This hegemonic rivalry thus differs sharply from previous historical episodes. From the Athens-Sparta transition to the handover from the United Kingdom to the US in the 20th century, the challenger's credentials were undeniable. It was as if a young, vigorous boxer were challenging and defeating a flabby, middle-aged opponent.

Today, by contrast, China and America look like two tired boxers who go at each other for 15 gruelling rounds, not to determine who will stay upright, but rather to discover who will be the first not to go down. With such wannabe and reigning hegemons is it any surprise that the world finds itself in a leaderless and rudderless drift?

Subramanian, a former chief economic adviser to the Government of India, is a non-resident senior fellow at the Peterson Institute for International Economics and a visiting lecturer at Harvard's Kennedy School of Government. He is the author of Eclipse: Living in the Shadow of China's Economic Dominance ©Project Syndicate, 2019.

Times have changed

wenty one years ago, the Nobel prize for economics had gone to a man from India. That was Amartya Sen in 1998. And now Abhijit Baneriee, also from India, achieves a similar feat. Just about two decades separate the two events. Yet, it seems that India of today is significantly different from what it was then. Nothing captures that change more tellingly than the way India's ruling establishment had responded to the award to Dr Sen in 1998 and the way a few senior ruling party leaders have responded to the same award to Dr Baneriee.

There was unequivocal and unquestioning appreciation of the Nobel committee's decision to

confer the prestigious award on Dr Sen in 1998. In a message to Dr Sen, then President Dr K R Narayanan, had said that the award was a "wellintentioned one", and he wished him many more years of productive academic and research work. Atal Bihari Vajpayee, who was then the prime minister, was equally effusive as in his message to Dr Sen he talked about the "upsurge of national pride over the honour bestowed upon him." Yashwant Sinha. finance minister in the Vajpayee government, also joined the chorus of praise for Dr Sen.

To be sure, the announcement of Dr Banerjee as one of the winners of the Nobel prize this year also elicited a quick response from President Ram Nath Kovind, Prime Minister Narendra Modi and Finance Minister Nirmala Sitharaman, The President noted that Dr Banerjee's work helped "economists better understand how to fight poverty in India and the world." Mr Modi complimented the economist on his "notable contributions in the field of poverty alleviation." A few days later, the prime minister also met the economist and showered more praise on him. And Ms Sitharaman congratulated Dr Banerjee for his contribution to easing poverty.

A different note, however, was struck by a few other senior members of the ruling establishment. Union Minister Piyush Goyal congratulated Dr Banerjee on his winning the Nobel prize, but noted that the economist's thinking was "left-leaning" and that the people of India had rejected his thinking.

The minister was referring to the economist's support for the minimum income guarantee programme that the Congress had promised in its election manifesto during the 2019 general elections. The national secretary of the Bharatiya Janata Party, Rakesh Sinha, also made a highly offensive and coarse comment about the economist.

Compare this with what happened to Dr Sen. Within days of his winning the award, Air India, the state-owned airline, decided to offer him a free pass for life for his travels. Top officials in the finance ministry — Finance Secretary Vijay Kelkar and Chief Economic Advisor Shankar N Acharya — responded

to the news of Dr Sen winning the Nobel prize with praise and compliments. Murli Manohar Joshi, who was then the human resource development minister was also among the many important people in the Vajpayee government who complimented the economist. In short, 1998 did not see any comments that were seen to be either critical or uncharitable like some of those made in 2019.

What has changed in the last two decades? The political party that led the government in 1998 was the

Bharatiya Janata party and it is the same party that is in power in 2019. There is of course a difference. In 1998, the National Democratic Alliance under Vaipavee did not have the comfort of the kind of majority the current dispensation under Mr Modi has in Parliament. It is possible that the government of Vajpayee was critically dependent on its coalition partners. Hence it was less strident in giving vent to its political likes or dislikes than the dispensation under Mr Modi, which does not have any such political needs.

But more importantly, the governance philosophy of Vajpayee was quite different from what prevails now under Mr Modi. The world view that Vajpayee endorsed and encouraged was far more inclusive and far less divisive or intolerant than what it is today. Even a Murli Manohar Joshi, a key member of the Vajpayee Cabinet, would compliment Dr Sen without any reservations, even though the economist belonged to a political spectrum for which he or his political party would not have any sympathies.

In contrast, the Narendra Modi regime is far more assertive about its political beliefs and convictions. Unlike the Vajpayee regime, Mr Modi's government and its senior members have a majoritarian approach, giving short shrift to views that are not similar to theirs. Thus, Mr Modi would compliment a Nobel prize winner, but members of his party or the government would not be restrained from either making unfair comments or criticising him for having offered advice to an opposition political party. Never mind, as Dr Banerjee later clarified, he was only a professional economist who would have offered advice to any political party that approached him. Indeed, he is working with many state governments that are ruled by the BJP and the presence of such regimes in those states has not restrained him from offering his professional advice.

In the last two decades, not only have the Indian society and politics changed — becoming more narrow and less catholic, the economists too have changed in a significant way. When Amartya Sen won the Nobel prize in 1998, his commentary on the state of the Indian economy was a bit restrained. Such commentary would appear to be conscious of the need to avoid any embarrassment for the concerns or priorities of the political regime in power. The last two decades have seen a change. The economists of today are far more relaxed and not at all averse to making comments that might upset the government of their country.

Thus, whether it is Raghuram Rajan, Arvind Subramanian or Abhijit Banerjee now, their comments are frank and forthright, without showing any concerns for the embarrassment the government of the day may be faced with because of their views. Of course, you cannot blame these economists for speaking out their mind or even making no secret of their political sympathies. But what makes the situation more complicated and challenging is the government's inability to absorb such comments with maturity and engage with them to see if its policy-making can derive concrete benefits from such interaction. It is a pity that the government is yet to recognise this weakness and make necessary amends.

Citizens of nowhere



HASAN SUROOR

his is an angry book written by an erstwhile Iranian refugee now happily settled in America but still seething with rage over the way refugees are perceived and treated. She quotes an American woman saying: "Well, I sure do get it. You came for a better life."

Dina Nayeri writes that "her words lodged in my ear like grit". "A better life?" Living in a decrepit Oklahoma apartment block for the destitute compared to which "life in Iran was a fairytale"? To her, the American woman's remark typified the Western perception of refugees as opportunists.

She weaves memories of her own experience with accounts of other refugees and asylum seekers to tell the other side of the story: What it's like to be a refugee? To give up the old world and venture into uncharted territory, often with little or no money and dependant on official handouts or other people's kindness? To be viewed with suspicion, and subjected to humiliation, and prejudice?

The problem with such books is that they end up being somewhat self-serving and this one is unremittingly so. In its attempt to offer a "new understanding of refugee life" it often descends into a rather unnuanced "Us versus the Rest" account

full of self-pity and victimhood. Moreover, it presents all refugees as a monolith: All genuine and virtuous whose claims must be accepted at face value. A mirror image of their critics who also see all refugees as a monolith — but as cons, essentially economic migrants, who invent stories of persecution and suffering

Ironically, the author's own Londonbased grandmother refused to sponsor her daughter and her two children when they were looking for asylum in Britain. "No. I don't get involved with refugees." She didn't regard herself as a refugee as she had left Iran before the Islamic Revolution and "wanted to do nothing with our post-revolutionary troubles".

to be able to live in wealthier countries.

The most riveting part of the book is Ms Nayeri's own story. But it is also problematic as it is likely to feed into the idea of "good/bad" refugee that she denounces. While readers will no doubt be moved by her and her family's harrowing experience, many might question her mother's decision to uproot them without an obvious compelling reason: Overnight she converts to Christianity while visiting her mother in London and then starts feeling oppressed

living in a fanatically Islamic country.

NEW DELHI DIARY

A K BHATTACHARYA

Was this a good enough reason for seemingly happily married and professionally successful woman to render herself and her two little children (Ms Nayeri was only eight and her brother even younger) homeless and expose them to the risks it involved?

Ms Nayeri's account doesn't suggest that there was ever any threat to their lives; or that escape was the only option. (It's almost like an Indian Christian or Muslim deciding to leave their country to claim asylum in Europe because they feel oppressed under a right-wing Hindu nationalist government.)

To her credit, Ms Nayeri does admit that her mother's account has been questioned by some fellow Iranians. Which led her to question her own story based as it was on what her mother told her.

She's right, of course, about the antirefugee prejudice. In the West, resentment against refugees and asylum-seekers has shaped public and political discourse since long before the post-Syria influx plunged

mainland Europe into a maelstrom of xenophobia and nationalist populism. German Chancellor Angela Merkel, the only European leader who stood up for the migrants allowing some 1.5 million of them to enter the country in 2015, has had to pay a heavy political price following an angry backlash against her decision.

The fact is that outside the bubble of rights activism refugees have few friends. Even liberal opinion is divided on whether it's possible to offer asylum to everyone who comes along. At any given time, thousands of people are knocking at the door, and most insist on going to countries of their choice rather than wherever they

can get protection. Even the most generously-inclined country can't possibly oblige everyone. For example, Britain, arguably the most sought after destination, is already overstretched in terms of housing and other social services, not to mention public appetite for more "citizens of nowhere",

in Theresa May's infamous phrase. A book offering an insider's insight into the world of refugees was long overdue; and Ms Nayeri deserves credit for doing just that. There are some really heart-rending stories of suffering, shame, humiliation

and the sheer frustration of being trapped in a limbo as they wait endlessly for their fate to be decided. But where the book goes awry is in its premise that a "refugee experience" is enough to make them entitled to asylum irrespective of their motives despite evidence that the refugee route is routinely abused by people desperately in search of greener pastures.

Despite these caveats, the book that lets us into the lives of one of the most misunderstood people in the world, and throws light on human capacity to adapt in the face of adversity, best illustrated by the author herself.

THE UNGRATEFUL REFUGEE Dina Nayeri Canongate, UK (2019) Pages: 370

WORDLY WISE

THE INTERNET IS BECOMING THE TOWN SQUARE FOR THE GLOBAL VILLAGE OF TOMORROW.

— BILL GATES

The Indian EXPRESS

∽ FOUNDED BY ∽ RAMNATH GOENKA

BECAUSE THE TRUTH INVOLVES US ALL

THE NREGA SIGNAL

Data that suggests young workers are increasingly turning to the scheme is a sign that must worry policymakers

FTER THE CONTRACTION of factory output by 1.1 per cent in August compared to the past year, the sharp decline in commercial credit in the year till September and other such gloomy indicators, come fresh signs of the deep-► ening slowdown. As this paper has reported, the proportion of young workers, those in the age group of 18-30, in the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act or MGNREGA scheme, has begun to rise, especially after 2017-18, when the economy was hit first by demonetisation and later by the implementation of the GST. The number of young workers employed under the demand driven social security scheme rose to 70.71 lakh in 2018-19 — up from 58.69 lakh in FY18 and seems to be on an upward trajectory this year too with 57.57 lakh having been employed upto October 21 this year. This is disturbing considering that MGNREGA is a scheme targeted at the hinterland, aiming to provide 100 days of work to each rural household. It is clearly a reflection of the little or limited opportunities for the young in rural India to venture out to bigger towns or cities given the slump in construction, real estate and manufacturing and the informal sector besides services, especially the hospitality business.

The warning signs were evident much earlier, including in the last fiscal, when the demand for work under the MGNREGA, described once by PM Modi as the living monument of the UPA's failure, rose almost 10 per cent compared to the previous year, given mounting rural distress and low farm support prices. The government, however, pegged the allocation for this scheme for FY20 at Rs 60,000 crore, a marginal decline compared to the revised estimates for the last fiscal with a minister saying that the government did not want MGNREGA to be a programme in perpetuity.

Economists have come under fire after the global financial crisis in 2008 for their failure to predict the downturns. Yet, it would be foolish to dismiss them downright when they diagnose problems and offer possible solutions to surmount the challenges of an economy facing major headwinds. Nobel laureate Abhijit Banerjee had recently pointed to what he reckoned is a worrying factor — average consumption expenditure at 2018 prices had fallen from Rs 1,587 per person each month in 2014 to Rs 1,524 in 2017-18 in rural areas, according to NSSO data. Banerjee has suggested raising wages under MGN-REGA and farm support prices. Hopefully, the government and policymakers will be alive to some of these suggestions and other measures needed to revive the economy.

KEYS TO KINGDOM

Government seeks to regulate OTT platforms and access communications. But what of its own bona fides?

N THE SUPREME Court, a matter that was originally a plea for regulatory parity between internet telephony platforms and OTT communications providers like WhatsApp, has turned into a question of national security and the ostensible threat to democracy posed by social media platforms. The government's anxieties about social media date back at least to 2016, when there was a mass exodus of workers from the Northeast from Bengaluru, panicked by rumours that they would be targeted. Recently, the spate of fake news and lynchings across the country has intensified public fears. Now, the government has told the court that the internet is "a potent tool to cause unimaginable disruption to the democratic polity," and will publish rules for its regulation in three months. The perception of the internet has also come full circle, from the democratic force-

multiplier of Arab Spring to the foe of democracy — even in the US, where the attorney general has requested Facebook not to deploy software which makes interception impossible. This turns the spotlight to the two issues in the way of what would seem to be the natural response to illegal actions on the internet, technical and political. Technically, it would mean rolling back or compromising end to end encryption, which would affect the data security of everyone, and not only suspects. This would represent a huge step back for privacy, which has now been recognised as a right, and is protected almost as zealously as public safety. Dismantling or bypassing encryption could work in a climate of political probity, in which governments can be relied upon to limit their attentions to legitimate targets. But if governments snoop obsessively and take arbitrary action?

Social media companies have shown a reluctance to diligently police content, and Mark Zuckerberg's speech at Georgetown University last week spelled it out explicitly. They have opened the door to governments seeking increased access to private communications, in the interest of public safety — and now of democracy. But governments in India have shown themselves to be incompetent at best, and malignant at worst, by incarcerating harmless citizens arbitrarily for trivial communications, wilfully misreading satire as sedition and weaponising the law. This has continued even after Section 66A of the Information Technology Act was struck down as unconstitutional by the Supreme Court, on the ground that it offered too much latitude. Governments must demonstrate that they are able guardians of citizens' data before they demand the security keys.

KOHLI'S MEN

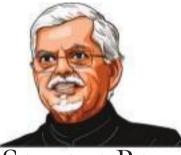
India could be looking at its most winning and winnable side at home in cricket

FTER THE 3-0 win over South Africa, India, under Virat Kohli, have been unbeaten at home for four years. Barring the odd instance of a Steve Smithfuelled Australian resistance in 2017, no side has come even remotely close Leto arresting his stupendous streak that now reads thus: Played: 24, Won: 18, Lost: 1. Beating India in India has always been daunting. Only four teams have achieved the feat in the last 32 years. It remains world cricket's final frontier, as Steve Waugh famously said. But few Indian sides have made those defeats routinely clinical like Kohli's.

In this series, the seamers accounted for exactly half of the South African wickets, a rarity in Asia. Kohli's India has a fine collection of bowlers, so well-stocked, versatile and skilled that they take the pitch out of the equation, literally and metaphorically. Kohli can unleash any one of his many prize-horses to hit the jackpot. And this series was achieved with his best bowler, Jasprit Bumrah, injured. He wasn't missed, as Kohli let loose pacer Umesh Yadav, who ended up picking 10 wickets at less than 15 runs. With left-arm spinner, Kuldeep Yadav, injured, Kohli summoned debutant Shahbaz Nadeem. He nailed three and had the legendary Bishan Singh Bedi swooning. He couldn't find good openers. No problem. In stepped Rohit Sharma. It is as if some unnatural force is picking the pieces for Kohli.

That's the sparkle of invincibility radiating from Kohli's men. Kohli has fitted in the daredevil nuts and bolts into the team while extinguishing the mortal character flaws; the careless habit of losing winnable matches. It brooks no argument that Kohli's is the most dominant Indian team ever at home. If they could conquer a few more shores abroad it's the most opportune time with most sides either rebuilding or transitioning or both — we could be watching the best side yet. It would be heartbreaking if Kohli's men stop short of the peak.

How to make friends



Delhi needs to invest in systematic and sustained outreach to opinion-makers in important countries

Sanjaya Baru

ON BEING INFORMED about India's nuclear test in May 1998, the first thought that had occurred to the late Naresh Chandra, then India's ambassador to the United States, was what he would have to do to limit the fallout of negative political and public opinion in circles that mattered in Washington DC. Chandra called the venerable Henry Kissinger and having informed him of India's actionm, asked him what he thought of it. Kissinger was not only just a phone call away for Chandra but was willing to respond instantly and favourably. He was not surprised by India's decision, he said. He knew that one day or another India would conduct such tests and declare itself a nuclear power. After all both its neighbours, China and Pakistan, had nuclear capability. Pakistan had not yet tested but both the US and India were aware that it had acquired nuclear capability. India did what it had to do.

Chandra wondered if Kissinger would be willing to go on record to say that to the US media. Kissinger was willing. Chandra immediately called a person he knew at the US television channel CNN and, having given him the news, suggested that he may get a scoop interviewing Kissinger and asking the grand strategist what he thought of India's decision. The journalist jumped at the opportunity and within minutes Kissinger was on CNN making supportive statements. That is top class diplomatic outreach.

The Bill Clinton administration did impose sanctions, the Washington DC think tank crowd did go berserk, The New York Times did editorially criticise India, but all that the Indian ambassador had to do in response was to quote none other than the doyen of American Cold War diplomacy in defence of India's decision.

I am reasonably certain that institutional memory within the government about such precedents is limited. External Affairs Minister S Jaishankar would certainly be aware of the Chandra-Kissinger-CNN story but very few other diplomats would be and, therefore, unprepared for such contingency. It is not surprising that on his arrival in the US, more than six weeks after the August 5 decision of the

Most Indian diplomats face two constraints. First is a cultural constraint. Many are neither attuned to nor professionally trained to deal with the highly opinionated opinion makers. Second is financial. The government does not provide adequate funds to diplomats to conduct such outreach in an adequately suitable and subtle manner. Media outreach is not conducting a press conference. It requires systematic relationship building that requires considerable investment of time and money.

government to revoke Article 370 of the Constitution, Jaishankar discovered that the US media was still very critical of the decision. "Media was ideological," said Jaishankar, "it didn't present the facts on Jammu & Kashmir."

It is worth checking what effort had been made to secure media outreach in the intervening six weeks, not just in the US but in other countries that mattered. There would have been considerable effort, to be sure. But that is besides the point. Was the Chandra-Kissinger-CNN kind of strategic action taken by diplomats on the ground? How many Indian diplomats around the world have that kind of access and influence in their respective stations?

During my time as Media Advisor to the Prime Minister, I was dismayed to discover how limited was the reach of Indian diplomats within the opinion-making community of the countries they were serving in. Most diplomats assumed their work was only to deal with the host government. Over the past couple of decades many, not all, have devoted time to reach out to local business leaders. Jaishankar was the first Indian ambassador in China to establish friendly relations with top Chinese business leaders. There has been effort at reaching out to think tanks and media, but both the time and funds devoted to that effort is limited.

Embassies of many countries based in Delhi have had a far more active outreach effort. Some even fund think tank activities and research. Many keep in regular touch with senior journalists and make sure they are invited to their home countries and well looked after. Amusingly, I have found some in government criticise Indian media for being available to such outreach. Journalists have been attacked for attending receptions at the home of the Pakistan high commissioner. What is not recognised is that it is the business of media to reach out to anyone who wishes to seek them out. Lend an ear, but be professional in what and how you report.

I have found most Indian diplomats face two constraints. First is a cultural constraint. Many are neither attuned to nor professionally trained to deal with the highly opinionated opinion makers. Second is financial. The government does not provide adequate funds to diplomats to conduct such outreach in an adequately suitable and subtle manner. Media outreach is not conducting a press conference. It requires systematic relationship building that requires considerable investment of time and money. I am aware of some very good examples of such diplomatic outreach by some of our best diplomats, but

there is very little institutional effort. Indian big business, especially those with business interests abroad or with investment in the media business, are equally to blame. Consider the investment multinationals investing in India make in reaching out to Indian public opinion. How many of our big companies do that in countries where they have business interests? Very few. Most are quite happy operating below the radar.

In canvassing support for the US-India civil nuclear energy agreement, the Manmohan Singh government used American and Indian business leaders to step up and secure support for the deal, especially in the US Congress. One of them even secured a Padma Bhushan despite a criminal case pending against him! Going beyond such one-off efforts, the kind that could be mounted in support of issues like the Article 370 decision, Indian business needs to invest more in creating firmer and professional platforms for national outreach.

While Prime Minister Narendra Modi and his team have excelled in creating events that help create global awareness about India like the Howdy, Modi event in Houston and the extensive TV coverage of Modi's meeting with Chinese President Xi Jinping — little attention is paid to more systematic and sustained outreach to opinion-makers in important countries. The task is made more difficult by the fact that not only is media globally more "ideological", a point Jaishankar made, but India too is doing things it has not done before. All the more why it needs a strategy and the capacity to shape global opinion.

The writer is Distinguished Fellow, Institute for Defence Studies and Analysis, New Delhi

A LEGAL REMEDY FOR PATIENTS

A charter of patients' rights will address power asymmetry between them and doctors

ABHAY SHUKLA

ON GANDHI JAYANTI, nearly 100 people gathered at the Rajghat to conduct a "Patients' Satyagraha". Mobilised by the Jan Swasthya Abhiyan and other patients' rights groups, many of the protestors were from families of patients who had been subjected to malpractice and negligence in private hospitals. Some of them had attempted to seek redressal from bodies like Delhi Medical Council, without much luck. They reported harassment, biased behaviour and knocking, in vain at the doors of appellate authorities. As a method of protest, "satyagraha" insists on the truth; the demonstration by the patients was therefore apt. They were able to share their stories often shocking ones — with the media and in the process, highlighted a less-recognised infringement of human rights.

The commercialisation of India's health sector in the last two decades has exacerbated the traditional power asymmetry between healthcare providers and patients. Health activists and doctors have pointed out that the existing codes of medical ethics are insufficient to protect patients from excessive misuse of medical power.

Although the Centre has recently drafted a bill to protect healthcare professionals and hospitals against violence — a laudable objective — progress on similar legal protection for patients against violations in hospitals has been much tardier. In April last year, the National Human Rights Commission (NHRC) formulated a comprehensive Patients' Rights Charter, delineating 17 rights which should

The commercialisation of India's health sector in the last two decades has exacerbated the traditional power asymmetry between healthcare providers and patients. Health activists and doctors have pointed out that the existing codes of medical ethics are insufficient to protect patients from excessive misuse of medical power.

be honoured by all public and private healthcare establishments. These pertain to the rights of patients over information about their illness, treatment and costs; their right to access records and reports; the right to seek second opinion; the right to emergency medical care irrespective of paying capacity; the right to transparency in rates; right to choose a pharmacy or pathology laboratory; the right to discharge a patient or receive a dead body, without detention by the hospital; the right to grievance redressal. This document also includes certain patient responsibilities, including the obligation to share required information with healthcare providers, and not to indulge in violence in healthcare institutions.

In June, the secretary, Union Ministry of Health and Family Welfare (MoHFW), issued a letter to all state governments outlining a smaller set of rights and some additional responsibilities for patients. Some key patients' rights enunciated in the NHRC charter were dropped in this communication. Nevertheless, this set of do's and don'ts must be publicised and implemented by all state governments. To begin with, all public hospitals, charitable hospitals with public obligations, and private hospitals involved in health insurance schemes (like Ayushman Bharat-PMJAY) must display the charter in their premises. This will set the stage for all private hospitals to implement this charter. The MoHFW should include the entire set of 17 patients' rights in the standards related to Central Clinical Establishments Act (CEA); this would ensure that all healthcare facilities in 11 states, which have adopted this Act, will observe patients' rights. Citizens groups, consumer organisations and health rights networks across India should demand the implementation of the Patients' Rights Charter in all hospitals.

Gross overcharging on medicines and consumables – on which some private hospitals are known to make whopping profits must be restricted by capping margins at reasonable levels, say 35 per cent of the cost price. Given the failure of most medical councils to provide timely justice to aggrieved patients, an independent and unbiased grievance redressal system must be operationalised. Such bodies should have representation from members of civil society and patients and consumer groups. Rates of medical procedures and treatments must be available to users of services in all private hospitals, and attempts should be made to standardise such rates — as recommended in the Central CEA Rules. All state governments must either adopt the central CEA, or enact their own CEA.

The current asymmetry of power in the healthcare sector should be corrected urgently. The implementation of the NHRC Patients' Rights Charter and the MoHFW's circular on patients' rights are good starting points for such a purpose.

The writer is national co-convenor, Jan Swasthya Abhiyan, and member of the NHRC Core group on Health and Mental Health



OCTOBER 23, 1979, FORTY YEARS AGO

POLLS DATES SOON THE POLL SCHEDULE for the mid-term election to the Lok Sabha will be announced in a few days. With this assurance President N Sanjeeva Reddy has appealed to the people "not to give credence to rumours which suggest that a postponement of the elections is imminent". Reddy's assurance and appeal were contained in a broadcast to the nation. The brief speech was devoted entirely to the forthcoming elections. He pointed out that all parties were in favour of an orderly poll. Everything possible was being done to conduct it in an orderly and impartial manner. The Chief Election

Commissioner would make the formal an-

nouncement in a few days, he said.

PM UNHAPPY

WHILE THE PRESIDENT'S assurance that the elections will not be postponed is bound to be welcomed by the opposition parties, his broadcast to the nation has thrown up an irritant in his relations with caretaker Prime Minister Charan Singh. Available information suggests that the President's address to the nation had not been approved by the Cabinet, nor had a copy of the speech been sent to the caretaker government. Inquiries show that no consultation has taken place between the President and the PM. Charan Singh, in informal conversations, has report-

edly expressed surprise as well as unhappiness over the President's speech.

CHARAN MUST EXPLAIN THE JANATA PARTY demanded that Charan Singh should disclose "other circumstances" which had prompted him to demand H N Bahuguna's resignation from the Cabinet The party spokesman Piloo Mody said that "this is something which this caretaker government on daily wages will have to explain. Do we return to the status quo-ante and the situation in which Charan Singh and Bahuguna levelled serious charges against each other?" He was referring to a reported remark by Singh in his letter to Bahuguna.

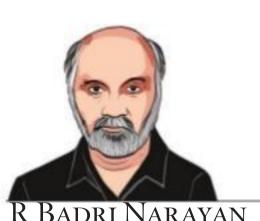
5 THE IDEAS PAGE

WHAT THE OTHERS SAY

"It seems that the Indians are attempting to promote a psychological warfare campaign against Pakistan." — DAWN

Smooth operators

Private train operators can introduce competition. Separation of infrastructure management from transportation services is not required



Badri Narayan

INDIAN RAILWAYS IS looking at the prospect of private operators running passenger services on the government-owned network. The Bibek Debroy committee had felt that the rail industry needs to be liberalised by allowing the entry of private operators to provide services. The idea in the report was to encourage growth and improve services. Recent announcements indicate that IRCTC, currently a fully-owned subsidiary, has been roped in to kick-start the process by operating train services with value-added features. This is just the beginning and plans are to scale up by opening up routes to other players in the near future. An empowered group has been constituted to expedite this process. For those of us in the rail industry, this is an exciting moment as it opens up the possibility of letting the market work towards better utilisation of the network, while improving services for passengers.

In 1991, the European Commission (EC) decided to open up the rail market. The Nineties were when it became fashionable to vertically separate the network industries (gas, telecom, electricity and railways). This separation was widely acknowledged as a way of introducing competition in the provision of services. Until then, these network industries were considered natural monopolies and railways were typically state owned. The new institutional framework entailed infrastructure remaining a monopoly while there would be a market of service providers. The EC issued a directive imposing an accounting separation between transport services and infrastructure management. Some countries went in for clear separation with separate organisations while others went in for the softer option of separate accounting. The first question that this poses in the Indian context is whether such separation between infrastructure and operations is a prerequisite for introducing private operations. To answer this question, we need to understand more about the new market that will open up.

The argument for separation stems from the need to move an internal transaction to the market. The EC directive provided a solution whereby even if the organisation continues to be vertically integrated, one could make the transaction to partially mimic the market if there was an accounting separation between services and infrastructure. Then there could be a price associated with the transaction between the two distinct units of accounting with separate cost calculations. In order to understand the importance of separation, we need to look more closely at

what is being transacted. The three basic elements of the market for train operations are: One, what the network owner sells to the private operator; two, how the price is determined for this transaction, and three, the terms of sale, that is, the contract design. Our focus is on the first element wherein the network owner sells a train path to the operator. When a toll road is opened, we as motorists merely drive up to the gate, pay the toll and use the infrastructure. Opening up the railway network does not mean anyone can simply show up at the terminal with a locomotive and coaches and run it on the rail network by paying a fee. The train operator is providing a service to passengers and therefore, needs to commit to a time schedule for passengers to board. More importantly, safe railway operations require the discipline of central control of train movements and movements strictly regulated by signals demarcating sections and stations. A train path, therefore, has time and space attributes and gives the operator scheduled access to rail tracks which are to be used for running on sections, dwelling at stations and stabling at terminals.

In a vertically integrated railway, based on the assessment of demand by the commercial department, the operations department checks for the availability of a path and schedules a service along that path. Arranging for coaches, locomotives and crew to run the train are part of the solution but not important for this discussion. In the case of a private operator, one can imagine that the demand for a service will come from the operator and thereafter a similar solution is worked out. It is here we must note that even the European Commission has not changed the train path allocation procedure and it remains the same as it was for the monopoly industry. While there is competition amongst train operating companies in Europe, there is not yet a market for train paths. Paths are allocated administratively based on the train service priority criteria that are well established. Given the fact that despite nearly three decades of opening up of the rail sector in Europe, market forces are not determining the allocation of paths, it can safely be argued that the separation between infrastructure and operations is not a pre-requisite for this

We can then conclude that competition in train services can be introduced by allowing private train operators to participate and that separation of infrastructure management from transportation services is not essential to bring in this competition. Should Indian Railways attempt a quantum jump and move towards a market-oriented allocation of train paths? On congested routes, can we allow market forces to resolve conflicts between train paths leading to an efficient outcome? These are some of the interesting issues that arise as we move along this path of opening up operations. Could this be an opportunity to alter train scheduling in a way that leads to smoother operations across the length and

transaction of a train path.

The writer is a senior officer in the Indian Railways. Views are personal

breadth of the network, coast to coast?

C R Sasikumar When Gandhi took on the mob

He stood against majoritarian passions when it was expedient to look away. There is a lesson in that for secular parties in these times



Asaduddin Owaisi

M K GANDHI'S life is well-documented, thanks, in part, to his autobiographical accounts and the frequent interventions he made in his own publications, including Harijan and Young India. But on his 150th birth anniversary, it is paramount that we look at his influence on others. What does Gandhi mean to the independent India that he never lived to see? How should today's Indians see Gandhi? Most importantly, what do we learn from Gandhi in these times of majoritarianism?

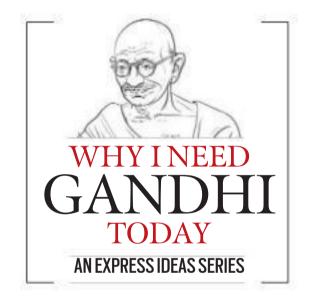
In the wake of the horrors of Partition (in the last few months of his life), Gandhi undertook his last satyagraha. This satyagraha, like the Chauri Chaura incident, demonstrated Gandhi's commitment to his own principles and his willingness to stand against the mob – regardless of how expedient it would be to look the other way.

Gandhi began his satyagraha on January 13. 1948. The fast was in light of the tense communal atmosphere that had gripped large parts of India. There were large-scale reprisals against Muslims (especially those in Delhi). Gandhi, by then, was already sick and frail but said his fast would go on till he was "satisfied that there is a reunion of hearts of all communities brought about without any outside pressure, but from an awakened sense of duty". He set seven conditions for breaking the satyagraha, and all of them pertained to the safety of Delhi's Muslims and security of their property. It was his fast that would result in a mass of Sikhs and Hindus taking a pledge for the protection of Delhi's Muslims. It takes courage to stand up against ma-

joritarian fervour, and to stand by those who are most vulnerable. Gandhi did not concede to the prejudices and anger of the mob, he used his political and social power to protect the rights of Muslims. Perhaps this is the greatest lesson for today's secular parties as they choose to distance themselves from Muslims while the community faces widespread majoritarian exclusion and violence.

However, this does not mean that Gandhi's life must not be read critically, or that his politics was above criticism. In this regard, we must not forget how Babasaheb Ambedkar saw Gandhi — during, and after his life. If the fast of January 1948 was to remind the majority of their commitment to minorities, the fast of Poona 1932 was to prevent separate electorates for Depressed Classes. Gandhi had agreed to separate electorates for Muslims and Sikhs, but was unwilling to concede the same for Depressed Classes. This, he saw, as separating "untouchables" from the broader Hindu identity. For Ambedkar, political power for his community was "indispensable" for their "survival". He would tell Gandhi "I wish to tell the Hindus that I should be assured of

my compensation". To demand an organic leadership that is independent of dominant class considerations would have been essential for those communities who had faced historical injustice. Gandhi used a tactic meant to speak truth to power against the weakest, most underrepresented class of the time. This legacy of Gandhi's has, unfortunately, only strengthened in India after his death. The unwillingness to see the link between independent leadership and emancipation has resulted in a situation where only pliant or token "faces" of Dalits or Muslims can think of being elected



We must not forget who killed Gandhi and why. Gandhi's unflinching stand when it came to Indian Muslims was unacceptable to Nathuram Godse, independent India's first terrorist. In Gandhi's assassination, the role of V D Savarkar, Hindutva's tallest leader, was also recorded by the Jeevan Lal Kapur Commission of Inquiry report. It was hatred of Muslims that fuelled Gandhi's murder. In his 150th year, Gandhi's murderer is embraced as a 'patriot' by a Member of Parliament from the current prime minister's party.

on a major party's ticket today.

What did Gandhi's absence mean for those closest to him? In March 1950, the then prime minister wrote to Gandhian K G Mashruwala. They were corresponding over the criminal act of placing idols inside the Babri Masjid in 1949. Jawaharlal Nehru minced no words, admitting that the Congress government in UP had done little to either prevent or "taking definite action" against the miscreants. Towards the end of the letter, Nehru confessed: "Today many Congressmen have become communal [.] I just do not know what we can do to create a better atmosphere in the country. Merely to preach goodwill irritates people when they are excited. Bapu might have done it, but we are too small for this kind of thing' (emphasis added).

Nehru understood how little one could do when majoritarian passions reigned supreme. More importantly, even the first prime minister of India knew of Gandhi's will and determination, his ability to singlehandedly fight the mob.

Lastly, we must not forget who killed Gandhi and why. Gandhi's unflinching stand when it came to Indian Muslims was unacceptable to Nathuram Godse, independent India's first terrorist. In Gandhi's assassination, the role of V D Savarkar, Hindutva's tallest leader, was also recorded by the Jeevan Lal Kapur Commission of Inquiry report.

It was hatred of Muslims that fuelled Gandhi's murder. In his 150th year, Gandhi's murderer is embraced as a "patriot" by a Member of Parliament from the current prime minister's party. We must keep Gandhi's memory alive — not as an idol but as a man who lived (and died) for India and all Indians.

> The writer is president of the All India Majlis-e-Ittehadul Muslimeen (AIMIM) and a Lok Sabha MP

LETTER TO THE EDITOR

ABOUT A SONG

THIS REFERS TO the article, 'Don't sing in Pilibhit' (IE, October 22). The suspension of the Pilibhit school headmaster was unwarranted. Students singing a hym is quite common in morning assemblies. What difference does it make if they sing it in Urdu?

Varun Das, Zirakpur

THIS REFERS TO the article, 'Don't Sing in Pilibhit' (IE, October 22). A language is a medium of communication and thinking. When I read Igbal's *Lab pe aati* hai dua, it evoked feeling of patriotism, just like Saare Jahn se Achha. The prayer at Pilibhit was not related to any religion. That said, at times, morning prayers at schools in India are sometimes religious. However, they don't become a matter of controversy. Minority educational institutions such as those run by Jains, Sikhs and Christians have religious prayers. Language should not be made a tool of division.

H Upadhyay via e-mail FAILING STUDENTS

THIS REFERS TO the report, 'JU unlikely to get IoE after Bengal refuses to commit Rs 2,000 crore' (IE, October 19). JU's not getting the IoE tag deprives the university of a fund which would have been invested in its development. This will also have a bearing on the educational prospects of many poor but meritorious students. This comes at a time when impropriety related to university admissions is on the rise. In the US, such incidences of wrongdoing were exposed by the Operation Varsity Blues. In India, authorities must tighten the noose around the perpetrators of such

LETTER OF THE WEEK AWARD

To encourage quality reader intervention, The Indian **Express offers the Letter of** the Week award. The letter adjudged the best for the week is published every Saturday. Letters may be e-mailed to

editpage@expressindia.com or sent to The Indian Express, B-1/B, Sector 10, Noida-UP 201301.

high profile crimes. Sauro Dasgupta, Kolkata

GOOD NEIGHBOURS

THIS REFERS TO the article, 'A more equal friendship' (IE, October 22). The key tenets of the Gujral doctrine are at the core of India's Neighbourhood First policy. The external affairs ministry recognises India's neighbourhood as its first circle of priority. New Delhi is pragmatically recasting itself as a facilitator of economic development in the region, where the partnership will be guided by the aspirations of the individual country and without expectations of reciprocity. The India-Nepal friendship is special in its own right and the relationship between the two countries is progressively maturing to accommodate each other sensitivities and national interests.

Sudip Kumar Dey, Kolkata



VIEW FROM THE RIGHT

Kashmir and 370

ALMOST THE ENTIRE issue of *Organiser* is dedicated to the abrogation of Article 370, the bifurcation of Jammu and Kashmir into two union territories and its after effects. Manmohan Vaidya, the joint general secretary of RSS, says in an article that "the deadly combination of Article 370 and 35A, dynastic politics, nepotism and communalism was in play misusing a large amount of funds allocated by Centre for development of entire J&K" and "West Pakistan refugees and SCs/STs were always denied the benefits".

Vaidya provides a historical background for Article 370 and how Jammu and Kashmir became a part of India. He then says that J&K "doesn't comprise of people living in Kashmir Valley alone but also includes people of Jammu and Ladakh region" and that the "benefits or losses due to this special status should be reviewed in its entirety and not just limited to the Valley". Under the cover of this special status, Vaidya continues, "Paksponsored terrorism and separatist forces

epaper indianexpress.com

were fostered to keep the state unstable in the name of religion and politics, warring against the Bharatiya security forces that were brought here to protect the people".

He calls the "act of amending Article 370 and removal of 35A to extend all the Constitutional provisions to the state of J&K by the Government of Bharat" as the "fulfilment of the promise given to the people of Bharat".

In the end, he quotes RSS chief Mohan Bhagwat saying that "the Sangh works for the feeling of fraternity and the only basis for this fraternity is 'unity in diversity'" and the world "terms this traditional thought process as 'Hindutva'". Vaidya writes "that is why when we say our nation is a 'Hindu Rashtra', it, in no way conveys that we don't need Muslims".

SANGH CONNECTION

ANOTHER ARTICLE in *Organiser*, is authored by Arun Kumar, the Akhil Bhartiya Prachar Pramukh of RSS, who has been the prant pracharak in J&K earlier. He writes that on August 15, 1947 people in J&K like everywhere else in India "were also breathing in free air after the slavery of centuries" but it did not "appear palatable to the people from a particular class who were inebriated in the communal frenzy. He says that they thought that Kashmir was a Muslim majority state that had to be in Pakistan and had "hoisted

the Pakistani flags on the government buildings in Srinagar before the sunrise".

Kumar says that the RSS volunteers came forward and took down those flags and "thousands" of patriotic citizens joined them in chanting Bharat Mata ki Jai.

He writes: "The Kashmir Valley had then and even now has a Muslim majority. Like today, a gang of nuisance makers existed at that time also who were few in number but had the capability to take the Valley hostage. In spite of this, the courage that the citizens showed on August 15, 1947 along with the RSS swayamsevaks by resisting those nuisance makers had the background of a grand programme of the RSS that had started just a few months earlier. The people of Kashmir valley experienced the capability and the discipline of the RSS for the first time in that programme."

He mentions several steps taken by RSS in I&K at that time and says that when the plan to attack on October 22 was being prepared on October 13, 1947, "in the presence of Mohammad Ali Jinnah, a swayamsevak was present there in disguise" and the information was relayed to the "RSS headquarters at Srinagar" which passed it on to Brigadier Rajendra Singh and Brigadier Fakir Singh.

Kumar lists more instances when RSS volunteers were called upon to help during and just after the attack on J&K and several interventions made by RSS in the region ever since. He says that RSS leaders and volunteers started suffering soon after Sheikh Abdullah took over and mentions Syama Prasad Mookerjee's death in Srinagar.

SECULAR ILLUSION

IN ITS WEEKLY column critiquing the media, Panchjanya talks about the pending Supreme Court decision on the Ayodhya issue. It says that "it is expected that the 500-year old dispute will come to an end" and the media has a negative attitude even on this. It adds that some media platforms are giving stage to certain people whose inflammatory speeches can vilify the atmosphere. "It is expected that government authorities are keeping an eye on them," it says.

It accuses certain media houses trying to establish a lot of lies. "Among all this, the fake narrative of the communists is also going on," the article states, referring to surveys by "any international agency" to state that India stands lower on Hunger Index compared to Pakistan and Bangladesh". The media is surreptitiously creating doubts about all attempts to build a temple and development.

The article raises questions about the media's attitude towards Rahul Gandhi, stating that there seems to be pressure on them to ignore "funny" speeches by him.

Compiled by Krishn Kaushik

#ExpressExplained

If there are questions of current or contemporary relevance that you would like explained, please write to explained@indianexpress.com

SIMPLY PUT

What's new in crime report, and the data

Latest NCRB report introduces categories for cyber crimes against women, cases of insult under SC/ST Act, duration of delay in closing police & court cases

DEEPTIMAN TIWARY

NEW DELHI, OCTOBER 22

ON MONDAY, the National Crime Records Bureau (NCRB) released the much delayed crime data for 2017. While it was without some crucial data categories, the data included were more fleshed out than in the 2016 crime report. The NCRB has introduced more than three dozen new categories and sub-categories of crimes under various heads.

The report omits data on mob lynchings, *khap* killings, murder by influential people and killings for religious reasons. Data on farmer suicides after 2015 are yet to be published although, sources said, the fully compiled data had been sent to the Ministry of Home Affairs 20 months ago.

New categories, broadly

At least four categories where significant diversification of data can be seen are crimes against women and children, atrocities against Dalits, cases of corruption, and time taken by police and courts to take cases to their conclusion.

For the first time, the NCRB has introduced categories of cyber crimes against women and children. In the case of Dalits, the NCRB has for the first time published data on offences registered solely under the SC/ST (Prevention of Atrocities) Act with further categorisation of insult, land grab and social ostracism.

The NCRB has also recorded cases of disproportionate assets against public servants besides introducing new crime heads such as abetment, criminal intimidation, simple hurt, credit/debit card and online frauds, Internet crimes through online gaming and kidnapping for begging among others.

More importantly, for the first time, the NCRB has not merely dwelt on pendency of cases with the police and courts but also the period of such pendency, which has thrown up some rather counter-intuitive data.

Women and children

In the case of women and children, the NCRB has this time recorded data for "murder with rape". In 2017, as many as 33,885 women were reported to have been raped across the country. Of these, 227 were murdered after the rape. As many as 28,152 children were raped with cases registered under IPC and the POCSO Act. Of these, 151 were killed after being raped.

The NCRB has, however, removed the category of gangrape that was introduced to the NCRB database following the December 2012 gangrape case.

In the category of cyber crimes against women, the NCRB has recorded 4,242 offences where women were either stalked, blackmailed or their morphed pictures were uploaded on the internet.

In a sub-category for SLL (special and local laws) cyber crimes against women, the number of women-centric crimes is given as 600, of which 271 relate to publishing or transmitting of sexually explicit material under the Information Technology Act.

The report has also introduced the categories of sexual harassment at the workplace and in public transport. As many as 479 and 599 cases were reported in 2017 under these categories respectively.

Also, 33,606 cases were registered and

DELAYED CLOSURE

CHARGESHEETS

(21.47 lakh chargesheets in IPC cases, 43% filed beyond 3-month deadline)

incu beyond 3-month de	Ladilile)
Within 1 month	32% (6.88 lakh)
1-3 months	25% (5.37 lakh)
3-6 months	20% (4.35 lakh)
6-12 months	14% (3 lakh)
1-2 years	7.5% (1.58 lakh)
More than 2 years	1.5% (29k)

FAST-TRACK COURTS

(38,004 IPC cases disposed of, 40% took more than 3 years)

3% (1,000)
4% (1,540)
8% (3,016)
15% (5,911)
30% (11,401)
19% (7,226)
12% (4,526)
9%(3,384)

40,420 juveniles apprehended during the year. "Majority of juveniles in conflict with law apprehended under IPC and SLL crimes were in the age group of 16 years to 18 years. These cases accounted for 29,194 out of 40,420, totalling 72.2 per cent cases during 2017," the NCRB said.

Justice delayed

While the NCRB has always collected data on pendency of cases with police and in courts, this was largely about the number of such cases. In the latest report, the NCRB has also recorded the period of pendency.

The data show police delayed chargesheets in 40% of cases. For IPC crimes, police are supposed to file a chargesheet within 90 days. But data show that in certain cases such as rioting, which includes communal riots, police delayed filing of chargesheets in 60% of the cases. It says there are more than 3 lakh cases pending investigations for more than one year.

The report says in more than 40% of cases with fast-track courts, these courts have taken more than three years to finish the trial. In fact, in as many as 3,384 cases committed to fast-track courts, the trial was finished in more than 10 years. Of the 38,000-odd cases that fast-track courts completed in 2017, over 4,500 cases had been running for 5-10 years. In only around 11,500 cases was the trial completed within one year.

In courts as a whole, 2,71,779 cases were pending trial at the end of 2017.

Other data

Under the category of rioting, new subcategories have been added which include vigilante action, disputes over water, power and property and rioting during *morchas*.

Some other new data include spreading of fake news where 257 offences have been recorded. As many as 952 election-related offences were also recorded in 2017 apart from offences relating to religion (1,808) and Obscene Acts and Songs at Public Places (29,557).

CRIME AGAINST WOMEN

(ALL INDIA: 3,59,849)

Uttar Pradesh



Assam

Delhi

Odisha

Haryana

223 CASES

(227 WOMEN)

Assam (27)

12%

29%

Cyber Blackmailing/Threatening

Defamation/Morphing

Fake Profile

TOTAL

Other Crimes

Cyber Stalking/Cyber Bullying of Women

UP(64)

NCRB crime report

Source: All graphics based on data in latest

MURDER WITH RAPE

Telangana

56,011

POPULATION (ALL INDIA: 57.9)

143.6

133.3

94.7

94.5

88.7

12%

(26)

9%

MP(21)

Maharashtra





600 CASES (IT ACT ONLY) **271** relating to publication of sexually explicit matter

329 other cyber crimes **4 TIMES** Assam's cyber crime cases against women (IT Act only),

CYBER CRIME AGAINST WOMEN



CRIME AGAINST CHILDREN

32,608 CASES

With 33.210 child victims (including 31,668 cases with 32,254 girl victims)

OFFENCES BY CARETAKERS OF JUVENILE HOMES

278 CASES (328 JUVENILE VICTIMS); UNDER

JUVENILES JUSTICE ACT Maharashtra

Rajasthan

Telangana

97

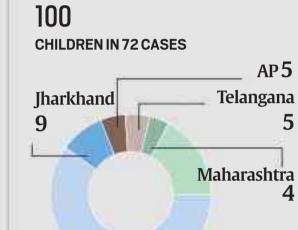
61

35

60



100



Karnataka

WOMEN CHILDREN

NA

3

70

88

132

555

50

147

3,087

4,242

271

Insults made up 50% of crimes against Dalits; 'traps' of corrupt officials spiked

DEEPTIMANTIWARY NEW DELHI, OCTOBER 22

MORE THAN half of all offences registered under The Scheduled Castes and the Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act where victims were Dalits, were related to insult and humiliation heaped on them data from 2017 released by the National Crime Records Bureau (NCRB) show.

The data released Monday also show a new trend in cases of corruption: "traps" involving lower-level government officials are increasing at the cost of criminal misconduct involving senior officials. This could mean either reduced corruption at higher levels, or increased enthusiasm among law enforcement to go after small offenders.

DALITS: NCRB has for the first time published data for cases in which only the SC/ST Act was invoked without any sections of IPC Unlike the 2016 data, there are separate figures for 2017 for intentional insult or humiliation of a Dalit, occupation of Dalit land, preventing the use of public space, and social boycott.

Of the 5,775 offences registered solely under the SC/ST Act in 2017 with Dalits as victims, 3,172 (55%) were related to "Intentionally Insult or Intimidate with Intent to Humiliate". There were 47 cases of land grabbing related to Dalits; they faced social boycott in 63 cases; and they were prevented from using public spaces in 12 cases.

The most insult cases were reported from Karnataka (1,175) followed by UP (804), and Bihar (338). Sixteen land grab cases each were reported from Himachal Pradesh and Karnataka. Cases of preventing a Dalit from using public space were reported from Maharashtra, Himachal, Karnataka, Kerala and Punjab. Fifty-seven of the 63 cases of social boycott or of a Dalit being forced to leave his place of residence were reported from UP.

Countrywide, 43,203 cases of atrocities against Dalits (including IPC and SC/ST Act cases) were reported in 2017, about 6% more than in the previous year. The highest rates of crimes against Dalits (number of incidents per 1,00,000 population) were in Madhya Pradesh (52), Bihar (41), and Rajasthan (35).

Higher numbers for crimes against Dalits also reflect more robust reporting of crimes by victims, which indicates empowerment

TRIBALS: Of 720 offences registered solely under the SC/ST Act in 2017, 373 (52%) pertained to "Intentionally Insult or Intimidate with Intent to Humiliate". There were 27 cases of land grabbing related to tribals and 18 cases of tribals facing social boycott. The highest numbers of insult cases were

in Karnataka, Andhra Pradesh (25), and Bihar (24). Jharkhand had 13 of the 27 cases of landgrab. Seventeen of the 18 cases of social boycott or of a tribal being forced to leave his place of residence were reported from Jharkhand.

The 7,125 cases of atrocities against tribals (including IPC and SC/ST Act cases) in 2017 were about 9% more than in 2016.

CORRUPTION: Registration of corruption cases has fallen by over 20% since 2015. "Trap" cases have spiked, while cases of criminal misconduct have fallen sharply since 2016.

"Trap" cases, in which bribery is caught red-handed, generally involve lower-level officials who accept gratification in cash. Criminal misconduct cases generally involve higher officials; pecuniary gains in these case are rarely made in cash.

Corruption cases involving "trap" rose by over 100% in 2017 over 2016; criminal misconduct cases fell by 70%. Overall, 4,062 cases of corruption were registered in 2017, compared to 4,439 in 2016. As many as 2,731 (67%) cases in 2017 were "traps"; 801 (20%) were of criminal misconduct.

Cyber crime jumped by 77% in 2017

WOMEN, KIDS TARGETS ON WEB

Cyber Pornography/Hosting/Publishing Obscene Sexual Materials

HARIKISHAN SHARMA

NEW DELHI, OCTOBER 21

THE NUMBER of cyber crimes increased dramatically in 2017 as compared to 2016, and nearly every fifth cyber crime in 2017 was committed against a woman, official data for that year released by the National Crime Records Bureau (NCRB) show.

A total 21.796 instances of cyber crime were recorded in 2017, an increase of 77% over the previous year's number of 12,317, says the NCRB report, Crime in India 2017. By contrast, the 2016 number was only 6% more than the 2015 number of 11,592.

More than half the incidents of cyber crime in 2017 were motivated by fraud, the report, which was released on Monday, said. "During 2017, 56 per cent of cyber crime cases registered were for the motive of fraud

(12,213 out of 21,796 cases) followed by sexual exploitation with 6.7 per cent (1,460 cases) and causing disrepute with 4.6 per cent (1,002 cases).'

Two hundred and six cases of cyber crime were registered for inciting hate against the country, and 139 were committed with political motives. One hundred and ten cyber crimes were related to terrorist activities.

Countrywide, the rate of cyber crime that is, the number of cyber crimes committed per 1,00,000 population — in 2017 was 1.7, the report shows. The most cyber crimes per 1,00,000 population were committed in Karnataka (5) in 2017; Telangana was next, with a rate of 3.3 cyber crimes per 1,00,000 population, followed by Maharashtra (3) and Uttar Pradesh (2.2).

In absolute numbers, UP, the most populous state, registered the largest number of cyber crimes (4,971), followed by

Maharashtra (3,604), and Karnataka (3,174). Among the Union Territories, the most cyber crimes in 2017 were registered in Delhi (162). Of the 21,796 cyber crimes registered in

the country in 2017, 4,242 — about 19.5% were committed against women, and 88 against children. The cyber crimes against women were related to cyber blackmail or threats, cyber pornography or hosting or publishing obscene sexual materials, cyber stalking or cyber bullying of women, defamation, or morphing and indecent representation of women, etc. Crimes against children included Internet

crimes committed through online games, etc. This is the first time that NCRB has compiled data on the nature of cyber crimes against women and children.

In 2017, a total 11,601 persons were arrested for cyber crime cases, 8,306 were chargesheeted, and only 162 were convicted.

Should Aadhaar link to social media accounts? The questions before SC

APURVA VISHWANATH NEW DELHI, OCTOBER 22

FROM JANUARY, the Supreme Court will hear cases seeking the linking of Aadhaar with social media profiles of individuals. It will be the first big legal battle on the right to privacy after the Supreme Court held in a landmark verdict in 2017 that privacy is a fundamental right. The two significant questions of law that the court will look into are: whether mandatory linking of Aadhaar to social media accounts violates an individual's right to privacy, and the balance between intermediary liability and free speech.

The context

It was in connection with these cases

that the government submitted an affidavit on Monday stating that the "Internet has emerged as a potent tool to cause unimaginable disruption to the democratic polity", and informing the Supreme Court that it will take another three months to revise and notify "extant rules" for "effective regulation of intermediaries" such as social media platforms.

Intermediaries, as defined by the Information Technology Act, 2000, include telecom service providers, network service providers, Internet service providers, webhosting service providers, search engines, online payment sites, online auction sites, online market places, and cyber cafes. Section 87 of the IT Act gives power to the central government to frame Rules; currently, Rules framed in 2011 regulate intermediaries.

The cases

Facebook, WhatsApp and Google had appealed for the transfer of such cases to the Supreme Court from the Madras, Bombay and Madhya Pradesh High Courts, where at least four such cases were pending. The Madras High Court was hearing two writ petitions filed in 2018 by animal rights activist Anthony Clement Rubin and Janani Krishnamurthy for seeking to link Aadhaar of users to their social media accounts, and a direction against intermediaries to provide information to trace individuals. The prayer for linkage to Aadhar was later withdrawn.

In October 2018, Sagar Suryavanshi, an advocate, moved the Bombay High Court seeking a ban on all paid political content online 48 hours before elections.

Survavanshi has withdrawn the case, and informed the High Court that he would join the proceedings before the Supreme Court In July 2019, advocate Amitabh Gupta

move the Madhya Pradesh High Court seeking mandatory KYC of all social media users using Aadhaar and other identity proof.

Facebook argued that these cases involved answering questions related to fundamental rights — specifically the rights to privacy and free speech. If different High Courts heard the cases separately and gave conflicting verdicts, citizens' fundamental rights could be affected, Facebook argued.

New guidelines on the way

The central government informed the Bench of Justices Deepak Gupta and

Aniruddha Bose that fresh guidelines for regulating intermediaries under the IT Act were in the pipeline.

"There are various messages and content spread/shared on the social media, some of which are harmful. Some messages can incite violence. There may be messages which are against the sovereignty and integrity of the country. Social media has today become the source of large amount of pornography. Paedophiles use social media in a big way. Drugs,

through the use of platforms run by the intermediaries," the court said. In January, the Ministry for Information and Technology had published draft Rules on regulating intermediaries, seeking re-

sponses from the public.

Privacy and sovereignty

The Madras High Court had sought an affidavit from V Kamakoti, a computer science professor with IIT Madras, who said he could provide the technology to enable the intermediary to decrypt the encrypted message when necessary. WhatsApp, on the other hand, has submitted that it is impossible for it to trace the creator of the "questionable" content" since it has end-to-end encryption.

While the court highlighted that "de-encryption, if available easily, could defeat the weapons and other contraband can be sold fundamental right of privacy and de-encryption of messages may be done under special circumstances but it must be ensured that the privacy of an individual is not invaded", but at the same time "the sovereignty of the state and the dignity and reputation of an individual are required to be protected".





OUT OF CONTROL

BSP leader Mayawati

Ever since the BJP government was formed in UP, every kind of crime and sensational incidents have been increasing in this big and important state, which has made life miserable for the common man

How can govt ask Amazon, Walmart for supplier data?

Bad enough to change FDI rules after Walmart paid \$16bn for Flipkart, govt now wants data that can benefit their rivals

HE GOVERNMENT'S BLOW-hot-blow-cold policy approach towards global multi-brand e-retailers such as Amazon and Flipkart is perplexing since, apart from the fact that it is supposed to be trying to attract FDI, the same rules don't seem to apply to local e-retailers, many of whom also have foreign investors, even if not at the level of the retailing subsidiary. It doesn't help that these changes—the government insists they are merely clarifications of existing rules—come after global retailers have spent billions of dollars (\$16bn in the case of Walmart's Flipkart acquisition) to set up operations here, and have lakhs of employees as well as local suppliers.

Oddly, the government first allowed global players to set up shop in India via what is called the 'marketplace model' even though FDI is not allowed in multi-brand retail. But, after billions of dollars came in to set up millions of square feet of warehouses with worldclass logistics, the government changed the rules frequently. In what is the latest change, the industry ministry wants these e-retailers to share details of the top five vendors supplying merchandise on their marketplace, the product categories they supply, their share of overall sales, the kind of support provided by the platform to these sellers (that probably means marketing margins and other commercial arrangements), the share of private labels in overall sales on the platform, where these are sourced from, etc. One could argue that the government is just trying to ensure the rules are being adhered to, but much of this is privileged information, and can quite easily get leaked to the competition. In any case, if the government can prove its rules are being violated, why doesn't it take action? The information has been sought following complaints by retailer associations like CAIT, which have alleged FDI norms are being flouted; they argue that while FDI is not allowed in multibrand retail, these marketplaces are surreptitiously funding 'deep discounting', which is what is making customer flock to online marketplaces.

Having got the large investment, it would appear the government doesn't want to antagonise local retailers—also a big voter constituency. So, after it looked the other way when FDI came in by the billions using the fiction called the 'marketplace' model, the rules were changed—last December—to ensure that supplies by a vendor on a marketplace were capped at 25% if they had a common FDI parent. The new policy also prohibited e-tailers from exclusive tie-up with suppliers, like a mobile phone manufacturer, for instance. The rules also decreed that marketplaces should not discount prices, only manufacturers or sellers are allowed to do that.

While it is not clear what an appropriate or fair level of discounting is, amazingly, the $same \, rules \, do \, not \, apply \, to \, local \, e\text{-}commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eign \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, for eight \, and \, commerce \, platforms-many \, of \, whom \, \, also \, have \, also \, als$ investment at the parent level—like those of Reliance Retail or Future Group. Also, 'deep discounting'has been permitted in other sectors; while incumbent telcos argued that RJio was indulging in predatory pricing by offering free calls and unbelievably low data-rates, even the Competition Commission of India (CCI) refused to act on this. Indeed, while this was justified by arguing that RJio's market share was too low for it to be indulging in predatory pricing, the same should also apply to online e-retailers who have a market share of 1-2%. Also, since the government view was that consumers were benefitting from low tariffs, the same logic should hold for online shopping. It is true that foreign e-retailers have access to capital, but they are also investing billions of dollars in India, and thereby creating lakhs of jobs and allowing lakhs of MSMEs to find buyers across the country. If the government wants the huge amounts of FDI flowing into the e-commerce space, which it appears it does, it must stop pandering to everywhim of local retailers; local retailers must learn to live with the competition just as steelmakers must stop demanding protection from imported products if the latter are cheaper.

Fighting fake news

Need more tie-ups like Mumbai cyber-cell with a startup

HE MAHARASHTRA CYBER police did well to tie up with a fact-checking app, Logically, to detect fake news and bias ahead of the assembly elections; Logicallywas monitoring social media platforms like Facebook, WhatsApp, YouTube, and Instagram for violations of the Model Code of Conduct, and reporting these to the Election Commission. It is not clear how many such violations were reported this time around, but during the general elections, going by law minister Ravi Shankar Prasad's reply in Parliament, a total of just 154 instances of fake news were detected by the Election Commission and reported to various platforms; given the kind of misinformation floating around on social media, the number looks quite small, suggesting the government has a long way to go when it comes to detecting and tackling fake news. Indeed, the government itself has been so worried about the proliferation of fake news, a year ago, it even asked all telecom service providers and internet service providers to explore how Instagram, Facebook, WhatsApp, Telegram, etc, could be blocked; the IT secretary had, at that time, even said he expected all platforms to behave in a responsible manner.

IT and telecom minister Prasad, in fact, has been having a running confrontation with social media firms on the need to share information with the government in a lawful manner in case there is such a need. Interestingly, the same point was made in a letter to Facebook chief Mark Zuckerberg by US Attorney General William Barr; the UK secretary of state, the US secretary of Homeland Security, and Australia's home minister were other signatories to Barr's letter.

While that is a larger battle that may not get resolved soon, the government would do well to keep engaging social media firms in finding solutions, and get more firms like Logically on a common platform to help track fake news faster on a 24x7 basis; indeed, some social media firms are doing similar work, and the government should help build on that. Barr's letter, in fact, said that more than 90% of the 18.4 million reports to the US National Centre for Missing & Exploited Children in 2018 were those made by Facebook (based on what it gleaned from people's posts/messages); his letter, as it happens, was warning Facebook that such complaints wouldn't be possible if the social network did end-to-end encryption of messages on it. WhatsApp, similarly, had tied up with factchecker BoomLive for detecting fake news, and even had the Hyderabad police on its app to do the same thing; those in the city could forward messages to the police on, say, a local gang of kidnappers, to get a confirmation. Ideally, nodal officers for all state police should be on the same fact-checking app, as should credible news organisations.

AYUSHmanBharat

Ayush should be covered under Ayushman Bharat, provided there are explicit treatment standards

IVEN HOW THE government has been a staunch advocate of strengthening alternative medicine under the aegis of the Ayush (ayurveda, yoga, unani, siddha, and homoeopathy) ministry, it is rather odd that these forms of treatment have been kept out of cashless insurance coverage under the Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana (PMJAY). While the Ayush ministry, as per a report in *Hindu BusinessLine*, has proposed the inclusion of 19 ayurveda, unani and siddha, eight yoga and six naturopathy treatments under PMJAY, health ministry officials seem to believe that including these under the scheme could lead to fraud, given how it would be difficult to control for leakages in a scenario where it is "difficult to ascertain that hospitalisation is for correct purposes".

While the ailments for which the Ayush ministry is seeking inclusion under PMJAY, including mental illnesses like clinical depression, can be treated or managed with allopathic treatment, bringing Ayush treatment under PMJAY is a key step towards encouraging alternative medicine. Experts say the lack of standardisation in treatment within Ayush disciplines means anybody can open up a centre and bilk the government and patients. The government must pay heed to this. Given how most alternative medicine is proprietary—for instance, the composition of most ayurvedic medicines is based not just on texts, but also on the practitioner's own tweaking of recipes—this will be a difficult proposition. Against such a backdrop, the Ayush ministry working with AIIMS to develop protocols for specific treatments, or using findings of scientific research to bolster evidence of efficacy, will help in the long run. The ministry, meanwhile, needs to focus on compiling treatment templates from the texts and making them available to the National Health Authority to make a stronger case for inclusion.

DISSECTING SLOWDOWN

HIGHER INCOME SEGMENTS ARE DRIVING GROWTH, AND WILL DO SO IN THE FUTURE. THE GOVT MUST PLAN DUTY STRUCTURES ON GOODS/SERVICES ACCORDINGLY

Get wiser about consumption to push growth up

HESE DAYS I am often asked, "As a consultant, what is your prognosis of the current situation and expectations of the future?" My answer on the future is simply that in the long term, growth is driven by only two things: right demographics, and productivity improvement. On the former, there is no debate. On the latter, there are open questions. Reform agenda to harness the combination of entrepreneurial energy, new skills and industrial technologies, competitive factor markets, enabling infrastructure, and supportive regulatory regime are critical. The NDA government has continued the reform process, and the recent corporate tax cut is the third radical economic reform after IBC and GST (which, I agree, are still works in progress and needs fine-tuning). The Competitiveness Index recently released by the World Economic Forum placed India at number 68—a fall of 10 ranks from last year, which shows much work still needs to be done.

This article is not about the future, but the present, of what ails the economy. Experts have offered many reasons behind the slowdown, ranging from NBFC credit squeeze, risk averseness of bankers, high deficit (including off-balance-sheet debt) with falling savings rate squeezing out private investments, negative sentiments from overzealousness of tax and enforcement authorities, and stressed balance sheets of infrastructure companies to slowdown in real estate sector from combination of demonetisation, GST, and RERA. And, I am sure others reasons can be added to this list.

All these explanations are right, with different degrees of impact. The government has taken steps to address many of them, the latest being the bold move to cut corporate tax to promote investments. But, as some observers have pointed out, many of these measures are focused on stimulating the supply side, and will need a longer timeline to deliver benefits. We have to stimulate consumption, which contributes to just under 60% of GDP and is the biggest driver of growth in the short-term. This has become a bigger imperative as slowdown



in domestic consumption is not being compensated by increased growth in investments and exports. And, given some of the challenges outlined earlier and the unsettled state of the global trading regime, a rapid upturn in these two drivers of growth seems challenging in the short-term.

To develop effective policy options

for driving demand, we must first understand what is happening to it. Here, we find an interesting pattern unfolding which can get obscured by media headlines unless we de-average carefully. For example, the headlines have been indicating the dramatic and continued slide in automotive sales and its impact. There is absolutely no doubt that addressing the short-term challenges of India's biggest industry is critical. The government has responded with several steps, like higher depreciation and removing ban on government vehicle purchase, to reverse this slide. Lower interest rates should also help. But, to me, the more interesting 'data' to note are anecdotes which suggest that sales of small-ticket mass consumption products—like glucose biscuits or bicycles—have fallen, and production volumes cut. This suggests that even mass consumer goods that were least impacted during earlier economic slowdowns are hit along with sectors like automotive this time. Surprisingly, at the same time, many higher-end brands across consumer categories continue to show robust growth. For example, in skin-care products, like moisturisers and body lotions, premium brands are growing much faster than mass brands. Similar patterns are observed across product segments ranging from shampoos to mobiles, and even alcoholic beverages. In motorcycles and cars, entry-

level brands are de-growing at a faster pace than premium brands. Clearly, there seems to be differen-

tial slowdown of demand across categories, and inside a category. To understand root causes for slowing demand of even small ticket price mass consumption products, we have to deaverage the income pyra-

Policy

interventions must

have differential

targets to make

them effective,

instead having a

one-size-fits-all

approach

mid and consumption patterns, and understand and separate the historical shift in consumption pattern from the shortterm impact of economic slowdown for effective policy interventions. A decade ago, the dis-

cussion on consumption growth in India was all about 'Next Billion' (NB) households, i.e., households emerging from the

lowest income segment, and starting their consumption journey. In 2010, the NB households and the next higher income segment (BCG calls them Aspirers) drove 60% of the total consumption, and were growing the fastest. Fast forward ten years, today, this share has fallen to around 40%, and in another decade, will fall further to below 30%. On the other hand, the consumption share of the top two income segments (BCG calls them Affluent and Elite) will have increased from less than 20% to slightly below 50%. So, clearly, the consumption pyramid and growth rates are undergoing a radical long-term transition. Higher income segments are driving growth, and will do so in the future. We have to understand this when we plan the duty structures on goods and services, and label some as luxury and others as mass.

The big question in the short-term is why has mass consumption demand slowed down faster than this shift in consumption pyramid should suggest. Now here, I offer a hypothesis for consideration as I don't have enough robust data to back it up. My logic has three parts. First, while we have seen an average per capita growth of over 6% over the last few years, most of this has gone to the upper income segments of Affluent and Elite; NB and Aspirers have seen slowerthan-average income growth. Second the households in these lower income segments have been hit the hardest from the impact of demonetisation and GST as many of them would be engaged in the informal and SME sectors, which, reports

suggest, have been badly affected. Combined with recent NBFC credit squeeze, the consumption of households in these two income segments has slowed down faster than the average. And third, this demand gap has not been compensated by the higher consumption (higher consumption rate *higher priced products) of the Affluent and Elite households. The reasons could be a combination of

higher tax rate on 'luxury' goods, subdued 'animal spirits' from stagnation/volatility/erosion in value of real estate and stock markets—the main wealth vehicles—and negative sentiments from overzealousness of tax authorities as well as recent increase in personal income tax. That brings me to my key conclu-

sion. If we want to pull the consumption growth levers, we need to understand this de-averaged view, both the root causes of the short-term behaviour, and the long-term shifts. We have to design and target policy interventions differentially to make them effective, and not simply go with the more convenient option of a one-sizefits-all strategy. What that could be is something that I leave to the judgement of our policymakers.

Growth outlook calls for rate-cut in Dec

Broadbased slowdown, if Diwali demand remains muted, may shave off 30 bps from BofAML's existing 6.2% GDP growth forecast for FY20. RBI should cut 25 bps in Dec, despite Oct inflation at 4.6%

OUR UPDATED BOFAML India Activity

Growth as per our India Activity Indicator dropped to 3.3% in August from 6.7% in July and 7.2% in April-June (see graphic). All its seven components slowed down from July. With the Diwali festival due earlier on October 27 from November 7 in 2018, activity should logically have picked up. Note our monthly

Indicator is a comprehensive high-

& AASTHA GUDWANI Sen Gupta is Chief India economist, and Gudwani is India

economist, BofA Merrill Lynch. Views are personal

INDRANIL SEN GUPTA

Indicator continues to point to a broadbased slowdown for another quarter. This likely poses a further 30bps downside risk to our 6.2% FY20 GDP growth forecast. (We will review after getting a sense of the October 27 Diwali demand.)

BofAML India Activity

frequency indicator of seven compo-

nents to gauge growth momentum of the Indian economy. We expect RBI MPC to cut another

25bps on December 5 (see graphic) despite tracking October inflation at a relatively high 4.6% on a temporary onion price hike. As banks link their lending rates on retail/SME loans (~40% of bank book) to external benchmarks, like the RBI reporate, this should reduce the cost of credit before the October-March 'busy' industrial season intensifies.

RBI stepping up durable liquidity to contain lending rates: We continue to expect the RBI to step up infusion of durable liquidity (\$20bn FYTD, \$40bn FY20 BofAMLe) to contain lending rates in the 'busy' season. Despite the recent step up in public spend pushing the money market into a substantial temporary surplus; RBI has bought \$7+bn of FX recently to ensure adequate durable liquidity. Unless FPI flows revive, we expect it to resume OMO by the winter.

The MoF may cut income tax to stimulate demand if the on-going Diwali festival demand turns out to be really weak. We estimate that the Direct Tax Code's new income tax slabs, as reported in the media, will likely cost about 0.8% of GDP. Given that the corporate tax rate cut has already cost the fisc 0.7% of GDP, the bar for an income tax rate cut remains very high, in our view.

Edited excerpts from BofAML's India Activity Indicator (October 16, 2019)

LETTERS TO THE EDITOR

FATF not blacklisting **Pakistan** With support lent by its allies, such

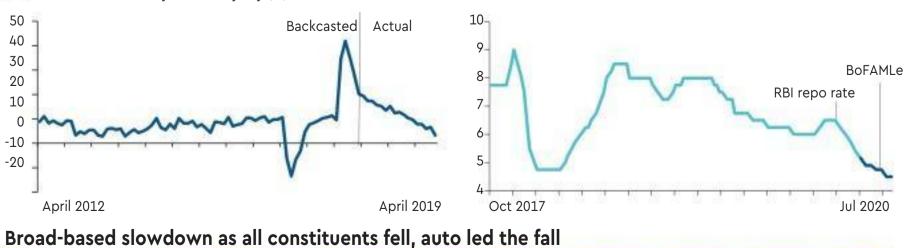
as China, Turkey, and Malaysia, Pakistan had avoided the ignominy of being placed on the blacklist of the Financial Action Task Force (FATF) that acts against terror financing in the world. While India had been persistently mobilising international support to isolate Pakistan and put pressure on it to dismantle the infrastructure of terror being operated with impunity within its borders, there is no discernible sign yet on the ground to suggest that Pakistan has mended its ways and refrained from promoting crossborder terrorism. Countries like China and Turkey, which support Pakistan for their own strategic reasons, would do well to understand and appreciate the fact that turning a blind eye to acts of terrorism would only endanger the peace and stability of the world. — M Jeyaram, Sholavandan

Uncertain Brexit Brexit was perhaps as misconceived

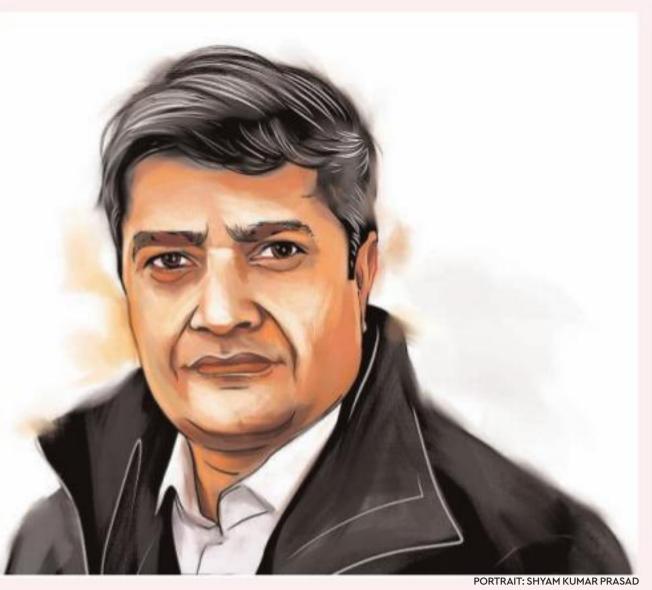
as the efforts to give it a practical shape have been. British-Irish history had long been troubling finalisation of a Brexit deal. Despite the Irish political demarcation into The Republic of Ireland, a sovereign nation, and Northern Ireland, a part of the UK, both had managed to keep their bonds strong under the EU's economic umbrella. Brexit would be an anathema to this. To assuage Irish sentiment, the deal provides for a customs check protocol at port on Irish Sea, rather than a hard border within. This could well have been done three years earlier. In voting for a delay to pass the Brexit accord by October 31, 2019, the MPs have yet again chosen pedantics over pragmatism. Brexit stays as uncertain as ever. — R Narayanan, Mumbai

Write to us at feletters@expressindia.com

...will push RBI MPC into 25bps rate cut on Dec 5 BofAML India Activity Indicator fell sharply in Aug BofAML India Activity Indicator y-o-y (%)



			2018										2019					
Component	Wt	Apr	May	Jun	Jul	Aug	Sep	Oct	Nov	Dec	Jan	Feb	Mar	Apr	May	Jun	Jul	Aug
Real cash demand	35.7	29.9	26.6	24.8	22.9	20.8	19.9	18.2	19.7	19.0	18.1	16.6	13.9	11.8	11.4	9.7	9.9	9.
Real credit	18.8	9.6	9.4	8.9	7.8	9.8	8.2	9.6	10.5	11.4	11.4	11.7	10.4	10.6	10.5	9.7	11.0	9.3
Traffic Index	16.2	8.5	5.8	6.4	8.0	7.7	6.8	8.8	5.1	5.4	4.6	2.5	1.7	-1.3	-1.4	-0.4	-0.4	-3.
IIP	13.5	4.5	3.8	7.0	6.5	4.8	4.6	8.4	0.2	2.5	1.6	0.2	2.7	3.2	4.5	1.2	4.6	-1.
Auto Sales	5.5	44.8	35.8	44.9	21.4	19.6	16.0	21.8	9.1	2.5	5.3	5.1	1.9	-2.8	-3.1	-4.3	-13.4	-19.
Capex	5.5	6.7	19.7	12.3	19.9	25.5	14.1	22.7	7.7	14.9	5.2	-0.6	2.5	5.1	5.8	-5.3	-3.2	-15.
Construction	4.7	20.7	12.6	13.8	10.7	13.9	11.4	17.5	9.1	10.9	10.5	8.0	15.1	2.7	3.3	-1.0	7.8	-4.
BofAML India ACT	100.0	19.4	17.4	17.3	15.7	15.2	13.5	15.2	12.3	12.7	11.8	10.3	9.7	7.8	7.9	5.9	6.7	3.



RECORD CAFE: CHANDRA BHUSHAN, ENVIRONMENTALIST

There's utter confusion on plastic waste regulation in the country

India intends to move away entirely from single-use plastics by 2022. Prime Minister Narendra Modi even mentioned the goal of making India a plastic-free nation in his speech at the United Nations General Assembly last month. Yet the fact is India hasn't had much success with plastic waste regulation despite ambitious policy moves. Environmentalist Chandra Bhushan tells FE's Sarthak Ray what ails India when it comes to meaningful action on reducing plastic waste. Excerpts:

What does India's plastic regulation provide for, and where does it fall short?

We have many regulations on plastics. The big one, of course, is the Plastic Waste Management (PWM) Rules, 2016, with specific obligations for every stakeholder in the plastic supply-chain, including the extended producer responsibility (EPR) for producers, importers, brand owners.

The Solid Waste Management Rules (SWM Rules), 2016, also have provisions for plastic waste, including EPR. But there is a difference in EPR provisions under SWM Rules and PWM Rules. SWM Rules say that manufacturers/brand-owners shall provide financial assistance to local authorities for establishing waste management systems to fulfil their EPR. PWM Rules, however, don't mention the financial contribution to local authorities. Instead, these direct manufacturers/brand-owners to collect waste through their distribution

channel or the local body concerned. The Biomedical Waste Management Rules, 2016, mandated phase-out of chlorinated plastic bags, gloves and blood bags

within two years. This has not happened. Then there are state regulations banning single-use plastics (SUP). Odisha has defined SUP as polythene carry-bags, bottled water of less than 200ml, disposable cutlery made of thermocol and plastics and decorative materials (flower and the likes) made of thermocol. UP has excluded 200ml plastic water bottles and decorative materials, and included disposable tumblers, in the definition of SUP. Tamil Nadu has defined SUP as "use and throw plastics," which include plastic carry-bags, flags, plastic sheets used for food wrapping and spreading on the dining table, plastic plates, plastic-coated cups, tumblers, water pouches and packets. So, states have a different definitions of what constitutes SUP.

Frankly, there is utter confusion on plastic regulation in the country. It's time we brought synergies in the rules and developed a national definition of SUP.

India has tried to regulate plastic pollution for at least two decades now. And yet nearly every stakeholder seems illprepared. Is regulation the problem, or is it industry and consumers who have simply failed to respond?

The problem is with regulations, and with consumer awareness and industry's status-quo approach. Consumer apathy is at the core of the problem. We all talk about plastic pollution, but end up using polythene bags. We crib about dumpsites, but litter ourselves, and waste segregation is still to take off meaningfully. The industry has not been very responsible either. Despite knowing the problem, it has kept

waiting for the government to bring regulations. No company in India has shown leadership in dealing with plastic pollution.

We enact regulations, but don't plan for implementation. For example, we don't give enough time to the market or local governments to adapt to new rules. Also, our approach to rule-making is command-and-control or ruling with a stick, to be precise. The experience of the past 20 years should have made it clear that regulations and penalties are not sufficient to eliminate the use of SUP.We need a transformation in the market and the municipal services to achieve this. This will require both stick and carrots.

EPR has been part of Indian regulation for some years. Yet not much seems to have happened here...

Current EPR provisions are designed for failure. For instance, we can mandate and enforce EPR on the formal sector, but they account for only 50% of multilayer plastic use. Small businesses and the informal sector use the remaining 50%. How do you enforce EPR on them?

Also, big companies outsource their EPRs to plastic recycling organisations (PROs), which are supposed to collect plastic wastes on behalf of the companies and send them for recycling. But there is evidence that PROs are involved in double-counting and data-fudging. I don't think the PRO model will be useful in fulfilling EPR obligations.

Afundamental mistake we are doing is by separating plastic waste management from the wider municipal waste management. Proper plastic waste management will only happen if there is good municipal waste management. EPR provisions will have to be designed for this reality.

Shouldn't we be more focused on recycling than bans, given almost 40% of the plastic waste generated in the country remains uncollected?

We will have to do both. Ban those products that are not required or have an alternative, and improve recycling.

Today, all the valuable plastics are recycled in the country. In fact, India has one of the highest rates of plastic recycling. What is not recycled is multilayered plastics (MLPs) or plastics that are too contaminated with other wastes.

To increase recycling, we must improve segregation of waste at source and improve the collection and transportation of segregated wastes. Currently, the unsegregated waste contains a lot of contaminated plastics. If the plastic waste is dirty, smeared with food, it doesn't enter the recycling value-chain as it is not viable to invest effort and resources in cleaning up the plastic to retrieve recycling potential, if any.

Similarly, as MLPs contain several polymers, they can't be recycled. At best, they can be incinerated in cement plants, used as a refuse-derived fuel (RFD), used in road construction or for making down-cycled products. As they fetch a lower price, they are not collected. To deal with MLPs, waste segregation and collection becomes very important. That is why I have kept arguing plastic waste management can't be treated as separate from solid waste management.

The government has banned use of plastic carry-bags below a certain thickness (50 microns). Does this help in any way?

The argument in favour of thicker plastic is it makes plastic carry-bags costlier and discourages use-and-throw culture. Also, a thicker plastic waste fetches a higher price and hence is likely to have a higher recycling rate. But this argument ignores many ground realities. Firstly, recycling rate depends on segregation and collection, and not only price. Secondly, this is not likely to reduce the amount of plastic in the environment. If people completely shift from thin plastic carry-bags to thicker ones, total polymer consumption might increase. So, if the vision is a plastic-free India, then the first step should be "less plastics" and not more. Lastly, this regulation will only work if people had access to affordable alternatives. So, along with banning thin plastic carry-bags, the government should also promote options like textile or paper bags.

How is the lack of alternatives to plastic hindering plastic waste management?

Alternatives don't come about on their own; they require deliberate government action. In countries where alternatives have been developed, fiscal tools have been used to either make plastics very expensive or make alternatives cheaper. We have not used economic tools so far. The private sectorwill invest in developing and producing the replacement when they know the government is serious about enforcing the ban. A combination of economic and regulatory tools is required to incentivise quick entry of alternatives in a viable manner.

Are there any examples globally of meaningful plastic waste regulation?

Globally, plastic waste regulation is about better segregation, collection, and then disposal. The focus is not so much on the end-of-the-life reuse/recycling. This is the reason why, globally, more than 90% of the plastics are not recycled.

Take the case of Sweden, which is considered to have one of the best plastic waste management systems. Its plastic recycling rate is meagre, as it burns most of its plastic waste to generate electricity.

Other developed countries, like the US, have outsourced plastic pollution. They consume a lot and then ship the waste to developing countries. Earlier, China was their dump yard, but now, given China and India banned import of plastic waste, these countries are looking towards Africa.

As far as banning SUP is concerned, the discussion has started only a few years ago and few developed areas, like the EU and Canada, have regulations and timelines on the ban. But so has India and a few other developing countries.

Frankly, developed countries are not exactly a guiding light on plastic waste management.

Some existing solutions, such as recycling plastics for road construction, incineration for energy generation, etc, come with their own set of problems. They are widely seen as a polluting bit in the plastics life cycle...

It is essential to understand that a plastic product cannot be recycled forever. As plastics are produced from hydrocarbons, at some point they have to be either incinerated in cement or power plants or used to recover oil or dumped in the landfill or used for producing some long-lasting products. Therefore, the plastic life cycle eventually is "from oil to oil" or "from oil to ash (incineration)." So, we will have to develop stateof-the-art facilities for energy recovery and conversion. There is no way out.

There are obvious environmental benefits of using plastics in road construction. Studies show that the life of the road is enhanced and the maintenance requirement is reduced. But, ultimately, plastic fibres, either as micro-plastics or in some other form, will eventually move out of the road into the environment. We do not yet understand the impact of this and hence must study this issue further.

How can industry course-correct? Packaging and logistics are a big part of the problem (packaging accounts for 43% of plastic manufacture in India).

The announcement by the PM to ban single-use plastics by 2022 has undoubtedly forced the industry to look for alternatives. I've been advising the industry to address this problem from four fronts:

Design for recycling. Instead of using multiple polymers in packaging like multilayered plastics, they should be shifting to single polymers that will aide recycling. This can be done quickly.

▶ Reduce the weight of packaging and the need for packaging. There is a vast scope to reduce plastic consumption here. This is again a short- to medium-term goal.

• Start developing, substituting plastic with alternatives. This is something that they need to start working immediately, but this is a medium-to long-term goal.

▶ Start working closely with the local authorities to ensure littering is minimised and the collection of segregated plastics is maximised. This will reduce visible pollution, enhance recycling and end-of-life use.

An agreement to agree

SUBHASHREE R

Advocate, Lakshmikumaran & Sridharan. Views are personal

Bringing uniformity in double taxation avoidance agreements through MLI

NDIA RECENTLY RATIFIED the MLI. Officially termed as the Multilateral Convention on Measures to check Base Erosion and Profit Shifting, MLI is an attempt by nations to bring amendments to the language of the bilateral double taxation avoidance agreements (DTAAs) in a uniform manner. India signed MLI in June 2017 and deposited the instrument of ratification on June 25 this year. The provisions of MLI will impact the provisions of different DTAAs starting from April 2020 onwards.

MLI requires signatory nations to provide for a minimum standard to prevent treaty abuse and improve dispute resolution mechanism. The aim is to ensure entities do not take advantage of differences in the wording of DTAAs resulting in double non-taxation like the case of a global coffee chain in the UK. MLI contains model articles pertaining to permanent establishments (PE), limitation of benefits clause that would limit treaty benefits to only those who qualify as residents of a treaty country rather than shell entities, binding arbitration, and so on. Nations may choose one or more of DTAAs to be a covered tax agreement (CTA), and opt for one or more articles to be incorporated in the existing bilateral treaty. Post ratification, the MLI provisions will have to be read into bilateral treaties. This is hailed as an efficient way to amend treaties without having multiple bilateral negotiations. MLI also seems to provide a better and faster route to bring certainty in interpretation of treaty provisions for both the non-resident taxpayer as regards taxability and for the resident as regards withholding obligations.

India has notified DTAAs with 93 countries as a CTA. But a closer look at the reservations—option by a country not to amend a certain article—suggests India may not have moved forward to counter treaty abuse. Some of India's major trading partners like China, Germany, Switzerland and Mauritius have not notified India agreements as a CTA. Hence, any change to the DTAA will be effected only through bilateral negotiations. Article 30 of MLI provides a leeway to nations to effect other changes to the treaty by bilateral negotiation even if they haven't chosen amending provisions as per MLI.

A debated issue is the avoidance of creation of a PE, generally referred to as an agency PE—it's created if the person who, working on behalf of the foreign entity (FE), can bind the FE. Thus, it was possible for a person to undertake all activities short of contractually binding the FE, and then claim no PE was constituted. India amended the definition of business connection in the domestic legislation (Incometax Act) to state that if a person has authority to contract or habitually contracts on behalf of another or habitually plays the principal role leading to conclusion of contracts, then it would constitute a business connection and, thus, income attributable to such activity would be taxable in India. Prior to the amendment, these provisions mirrored the provisions of agency PE in DTAAs. The amendment brought the domestic law largely in line with the language in MLI. But in case the treaty partner does not opt for change in language as per MLI, then the language of the domestic law cannot prevail over the treaty. Thus, amendments to the domestic law per se may not yield the desired results for India in the absence of corresponding amendment in DTAAs.

Many treaty partners have not adopted Article 14 of MLI (avoidance of tax by splitting up of contracts). Entities can divide the work among various related enterprises such that no activity falls within the time threshold required to constitute an installation PE or a construction PE (in respect of project sites). Another method is to split the activities of installation, erection, supervision, etc, among various entities, so that when seen individually, no PE is constituted. Article 14 tries to address both the situations by providing that if either the activity is split among persons such that the aggregate of such activities exceeds 30 days without breaching the overall threshold (say 6-12 months) prescribed in the treaty or they are performed by closely-related enterprises, then a PE may be constituted. But most treaty partners have not opted for this article, even though India has.

The attempt to bring uniformity in language of the treaties and address tax evasion through MLI is laudable. A model draft with nations opting one or more of the articles is definitely a quickerway to amend the treaty. However, nations will seek to protect their stated positions or negotiated positions, and the certainty sought by business as regards taxation by a country and relief from double taxation may yet be elusive. What MLI achieves is perhaps an agreement to agree.

REGIONAL CAFE: TAMIL NADU

have faded from news headlines in the last few weeks. Everyday some bit of good news has been trickling in ever since the skies opened up at the end of August after a gap of 400 days. The Southwest monsoon has eased the city's water crisis as it brought a surplus of 30% rainfall in September, the highest since 2014. The two neighbouring states, Andhra Pradesh and Karnataka, have been more than willing to release water from their overflowing rivers, Krishna and Kaveri, to feed Chennai's water reservoirs.

Chennai's water crisis went global when Hollywood star Leonardo DiCaprio tweeted about it in June. The Washington Post and other Western papers and TV channels too gave it prominence with pictures of women waiting to collect water with colourful plastic pots. The crisis caught everybody's imagination.

However, women waiting for water is not a new phenomenon. Even during years when the monsoon doesn't fail and Chennai doesn't run dry, women still have to use pots to take water home from corporation storage containers. Tap water has not been available for slum and tenement dwellers even in the heart of the city. Women have had to climb several floors to take water up to their tiny flats. Men who are usually under an alcoholic stupor cannot wake up early enough to fill containers.

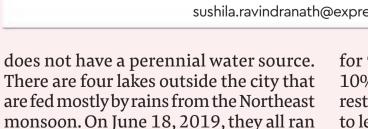
According to 2011 Census, Chennai had a population of 8.24 million. Now it is possibly a little over 10 million. The city

Running out of water, and time Chennai can no longer depend only on

surface and groundwater sources







dry, leaving the city in severe crisis. The city's average rainfall is 1,400mm. After the floods of 2015, when Chennai nearly went under water, there were hopes that acute water shortage will not occur for several years. That was not to be. With two successive droughts and no rain for 400 days, Chennai reached its 'day zero' in June when all its four major reservoirs ran dry.

Chennai Metrowater's total water supply for the people is about 830 million litres per day (MLD). The reservoirs supply 65% of the water. Groundwater accounts

for 9%, desalinated seawater 16%, and 10% reclaimed wastewater comprises the rest. In June, the total supply got reduced to less than half. Desalinated water, Veeranam Lake and some peripheral sources helped Metrowater supply driblets of water when Chennai was fast drying up.

There have been frenetic rainwater harvesting (RWH) activities to charge fast depleting groundwater. Installation of RWH systems and upgrading existing ones are big businesses now. So is domestic borewell digging. Communities are also attempting to desilt and rejuvenate many small water bodies. Water experts say that these are necessary initiatives to recharge groundwater, but are not the solutions for



the city's water crisis.

There have been similar crises many times. By the 1990s, the state government started working on several water augmentation schemes and came up with some solutions in the 2000s. The supply of water from Veeranam Lake in Cuddalore district to Chennai to meet the city's drinking water requirement and the Telugu Ganga scheme to bring Krishna river in Andhra to Chennai were completed in the middle of 2000s. A 100 MLD desalination plant went operational in 2013. RWH was made compulsory for all households.

The authorities rise to the occasion whenever there is a crisis and come up with innovative solutions like bringing

water by train, finding water in quarries and so on. These have been patchy and temporary solutions. This year's crisis has showed that Chennai can no longer depend only on surface water and groundwater sources. To do something more permanent and climate independent, strong political will is required. Worldwide water use for agriculture is

70%. In India it is 90%. Even in Chennai metropolitan area it is 80%. Households consume only 10%. India is known to be highly inefficient consumer of water for agriculture. Drip irrigation has not been given as much attention as it should have been in the state. Tamil Nadu should get more serious about changing cropping

patterns to grow less water-intensive crops. Experts say that farmers should be persuaded to switch over to reclaimed wastewater wherever possible for irrigating non-food crops. The state government has to start giving priority to conserve and preserve water usage for agriculture.

Wastewater treatment has to be given priority. Water-short countries are moving rapidly to recycling wastewater for all uses KAshok Vardhan Shetty, IAS, former chairman of Chennai Metrowater, says, "Even if 30% of Chennai's present quantity of wastewater is reclaimed for reuse, an additional 250 MLD of water will be available. Reclaimed wastewater should be mandated for non-potable uses in industries, construction, gardening and landscaping, large apartment blocks, and so on."

Poor water pricing has been a major problem. It has resulted in inefficient use of water, lack of funds for improving infrastructure and investing in new technologies which are now available and are costeffective. Free and highly subsidised water is no longer viable. Water pricing is a difficult decision for a state that believes in freebies. Shetty says that as water metering in households is near impossible, Metrowater must install metres at various transmission and distribution points to identify precisely where leakages occur.

The city is dependent on the Northeast monsoon, which is a few days away. If it fails again, Chennai will be in dire straits. It's time the government and communities came together with the help of technology to work on long-lasting solutions.

epaper. financia press.com